ओशो, कबीर, बुद्ध तथा अन्य संत

-मा अमृत प्रिया, स्वामी शैलेंद्र सरस्वती

ओशो, कबीर, बुद्ध तथा अन्य संत

-मा अमृत प्रिया, स्वामी शैलेंद्र सरस्वती

Contents

ओशो और संत कबीर.....2

ओशो एवं भगवान बुद्ध.....34

ओशो एवं अन्य संत.....55

गुरु और शिक्षक.....60

धर्म, अध्यात्मवाद एवं भौतिकवाद.....69

ओशो : तीन प्रमुख बातें.....76

धर्मों के बीच विवाद नहीं, संवाद.....78

आस्तिकता-नास्तिकता दोनों ही मृत.....79

ओशो के विचारों की प्रासंगिकता और महत्व.....81

ओशो: संघर्ष और त्याग की कथा.....82

ओशो की शिक्षाओं का जीवन पर प्रभाव.....83

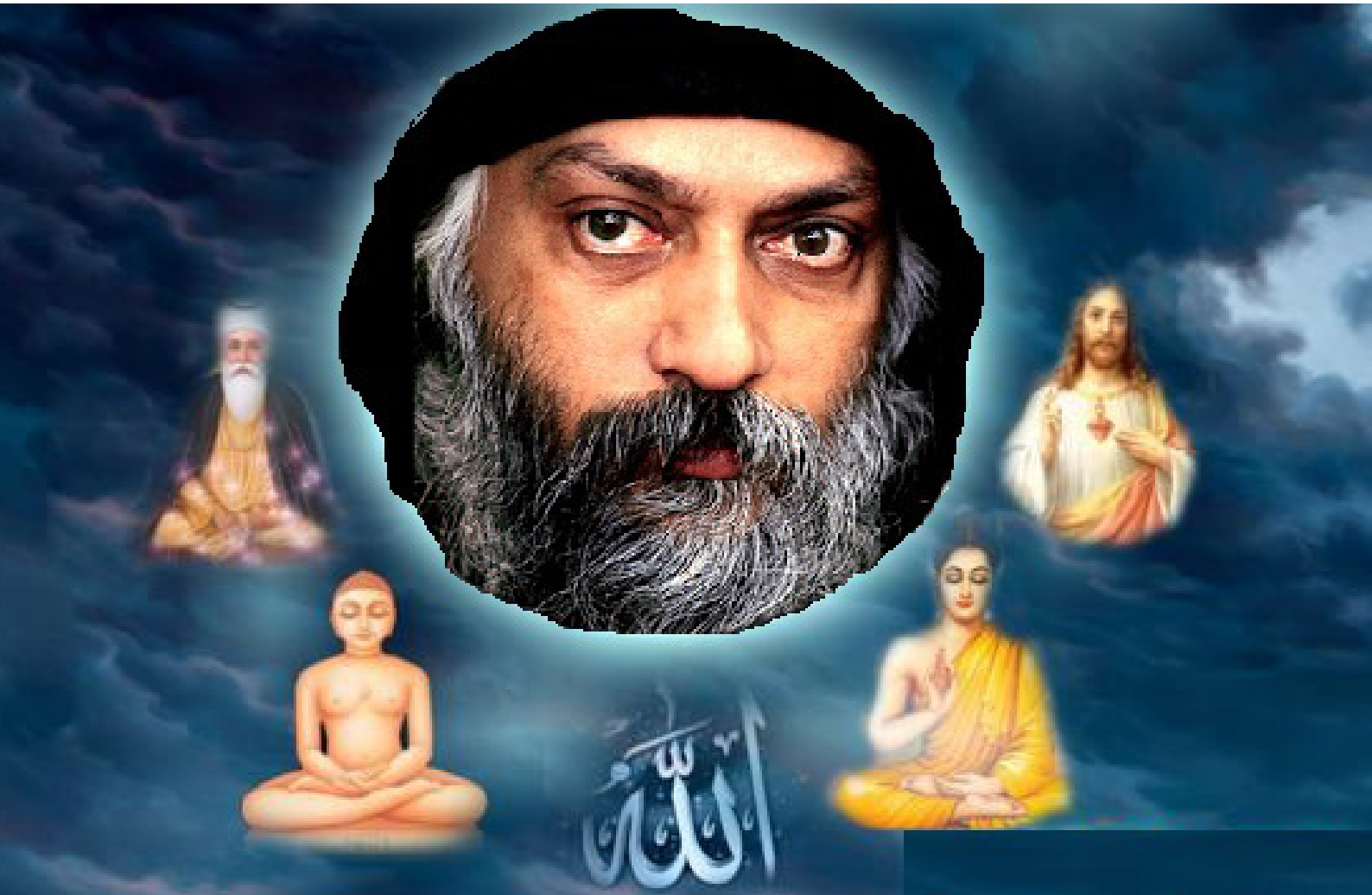

ओशो फ्रैगरैंस

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड जिला:
सोनीपत, हरियाणा 131021

contact@oshofragrance.org

www.oshofragrance.org

Rajneeshfragrance

+91-7988229565
+91-7988969660
+91-7015800931

ओशो और संत कबीर

क्या ओशो भी संत कबीर की तरह शब्द साधना सिखाते हैं?

जी हां। ऐसा कोई संत आज तक नहीं हुआ जिसने शब्द की साधना न सिखाई हो।

कबीर कहते हैं- 'साधो, सब्द साधना कीजै।'

ओशो ने उपरोक्त वचन को इस प्रकार समझाया हैः

विज्ञान की सारी खोज आंख के माध्यम से हुई, इसलिए विज्ञान आक्रमक है और हिंसक है। इसलिए विज्ञान का अंतिम परिणाम युद्ध है।

धर्म की सारी खोज कान से हुई--अनाहत नाद को सुनना।

परमात्मा को देखना कम है, परमात्मा को सुनना ज्यादा है। परमात्मा को पाने का ढंग वही होगा, जो संगीत को गुनने का होता है; जो संगीत में डूबने का होता है।

मेरे पास आकर बहुत लोग कहते हैं कि 'आपके आश्रम में बहुत संगीत, नृत्य है। लेकिन ऐसा हम किसी और आश्रम में नहीं देखते!' उनको 'शब्द' का कुछ पता नहीं, जो ऐसा पूछते हैं।

तो जिन आश्रमों में संगीत नहीं है, नृत्य नहीं है, उन आश्रमों में शब्द की साधना नहीं हो रही। उन आश्रमों में लोग उदास बैठे हैं, उत्सव नहीं हो रहा।

परमात्मा से बहुत दूर है आंख। कान बहुत करीब है।

साधो, सब्द साधना कीजै।
जेही सब्द ते प्रकट भए सब, सोइ सब्द गहि लीजै॥
सब्द गुरु सब्द सुन सिख भए, सब्द सो बिरला बूझै।
सोई सिष्य सोई गुरु महातम, जेही अन्तर गति सूझै॥
सब्दै वेद पुरान कहत हैं, सब्दै सब ठहरावै।
सब्दै सुर मुनि संत कहत हैं, सब्द भेद नहिं पावै॥
सब्दै सुन सुन भेष धरत हैं, सब्दै कहै अनुरागी।
खट-दरसन सब सब्द कहत हैं, सब्द कहै वैरागी॥
सब्दै काया जग उतपानी, सब्दै केरि पसारा।
कहै कबीर जहं सब्द होत हैं, भवन भेद है न्यारा॥
कबीर सबद सरीर में, बिन गुण बाजै तंत।
बाहर भीतर भरि रह्या, ताथै छूटि भंरति॥
सब्द सब्द बहु अंतरा सार सब्द चित देय।
जा सब्दै साहब मिलै, सोई सब्द गहि लेय॥
सब्द बराबर धन नहीं, जो कोई जानै बोल
हीरा तो दामों मिलै, सब्दहिं मोल न तोल॥
सीतल सब्द उचारिए। अहम आनिए नाहिं।
तेरा प्रीतम तुज्झमें, सत्रु भी तुझ माहिं॥

-ओशो, कहै कबीर मैं पूरा पाया-3

परातत्व से पहचान के लिए कबीर ऐसा क्यों कहते हैं--घाट भुलाना बाट बिनु, भेष भुलाना कान; जाकी माड़ी जगत में, सो न परा पहिचान?

ओशो ने अपनी एक किताब का शीर्षक रखा है--घाट भुलाना बाट बिनु।

संत कबीर हमें उस घाट की याद दिलाते हैं जहाँ से भवसागर को पार करने के लिए साधना की नाव चलाई जा सकती है। लेकिन हम उस घाट के बारे में सब कुछ भूल गए हैं और वहाँ तक पहुँचने के रास्ते की भी विस्मृति कर बैठे हैं। संसार के क्रियाकलापों में इतने व्यस्त हो गए कि प्रभु की ओर जाने का समय ही नहीं बचा। संसार में इस बुरी तरह उलझे हुए हैं और हमें संसार से परे परम तत्व की याद शेष नहीं रही। अंतर्मुखी होने का विचार जगत से खो गया, बहिर्मुखी व्यस्तता इतनी ज्यादा है कि भीतर मुड़ने की फुरसत कहां?

दुनिया में ऊंचे महल बनाने वाले, शक्ति और संपत्ति की दौड़ में संलग्न महत्वाकांक्षी लोगों की भीड़ प्रभु से चूक जाती है।

सतगुरु का काम शिष्य को यह याद दिलाना है कि वह घाट, वह तीर्थ, वह पवित्र स्थान, आप के भीतर ही मौजूद है। अंतर्यात्रा के मार्ग पर चलो, ध्यान में, समाधि में, आत्म-रमण की स्थिति में डूबो और आप पाओगे कि परम तत्व का ज्ञान घटित हो गया है।

क्या कबीर साहब की यह घोषणा अहंकार से ओतप्रोत नहीं लगती- 'कहै कबीर मैं पूरा पाया'? उनके बाद वालों के लिए प्रभु के खजाने में से कुछ पाने के लिए शेष बचा या नहीं?

आप क्या सोचते हैं कि 'आउट ऑफ स्टॉक' हो गया परमात्मा! कबीर साहब ने पूरा ही ले गए। यह पहेली अद्भुत है। गणित से समझ में नहीं आती, ईशावास्य उपनिषद का ऋषि कहता है उस पूर्ण प्रभु में से पूर्ण ही निकाल लो, तो भी पीछे पूर्ण शेष रह जाता है। *और उस पूर्ण में पूर्ण जोड़ दो तो भी वह पूर्ण ही रहता है। किसी दूसरे रहस्य लोक की बात हो रही है, हमारे गुणा भाग की दुनिया के हिसाब किताब की बात नहीं हो रही।*

परमात्मा जिसको भी मिलता है, पूरा ही मिलता हैं। उसके अंश नहीं होते, टुकड़े नहीं होते हैं। प्रभु खंडित नहीं होता इसलिए तो हम कहते हैं उसको अखंड। अविभाज्य, इनडिविज़िबल, उसके डिविज़न, अंश नहीं हो सकते। तो जब भी जानोगे, पूरा ही जानोगे, कबीर ने भी पूरा ही जाना। आप जानोगे आप भी पूरा जानोगे। आज से 1000 साल बाद कोई जानेगा, वह भी पूरा ही जानेगा। परमात्मा कोई धन या वस्तु, ऑब्जेक्ट नहीं है, जिसे बांटने से कमी हो जाए। यह अंश और पूर्ण की बात बिल्कुल गलत है। वह पूरा का पूरा ही मौजूद है। और सब में मौजूद है।

एक बड़ी पुरानी कहावत आपने सुनी होगी--कण कण में भगवान। परमाणु में पूरा ब्रह्मांड मौजूद है। जरा भी कम नहीं, पूरा का पूरा मौजूद है। कबीर साहब का दपद इस प्रकार है-

लोका जानि न भूलो भाई!
खालिक खलक खलक में खालिक, सब घर रह्यो समाई।
अला एकै नूर उपजाया, ताकी कैसी निंदा।
ता नूरै थें सब जग कीया, कौन भला कौन मंदा।
ता अला की गति नाहिं जानी, गुरि गुड़ दीवा मीठा।

कहै कबीर मैं पुरा पाया, सब घटि साहब दीठा।

ओशो ने इस प्रकार समझाया है कि सदगुरु इतनी मीठी बातें देते हैं, ऐसा मीठा गुड़ देते हैं, फिर भी तुम स्वाद नहीं ले पाते? क्या है स्वाद सदगुरु का? सदगुरु का एक ही स्वाद है--कि अल्लाह की गति का पता चल जाए; परमात्मा के रहस्य का पता चल जाए। 'ता अला की गति नहीं जानी, गुरि गुड़ दीवा मीठा।' सद्गुरु एक ही तो मिठाई बांटते हैं!

एक बार ऐसा हुआ कि काशी की एक छोट सी गली में दो दुकानदारों में झगड़ा हो गया। दोनों मिठाई वाले थे। जब झगड़ा हो गया, तो एक-दूसरे पर लड्डू फेंकने लगे। और कुछ था भी नहीं फेंकने कोई मारामारी हो गई लड्डू की! भीड़ इकट्ठी हुई! भीड़ ने खूब मजा लूटा, क्योंकि लड्डू मिले। इधर के लड्डू भी मिले, उधर के लड्डू भी मिले। कहते हैं, कोई फकीर वहां खड़ा देख रहा था, वह बहुत हंसने लगा। उसने कहाः ऐसे ही गुरुओं के बीच कभी अगर विवाद भी छिड़ जाता है, तो लड्डू ही फेंके जाते हैं।

अब महावीर और बुद्ध में जो विवाद है, देखने वाले के लिए, दोनों तरफ से लड्डू फेंके जा रहे हैं। शंकराचार्य और बुद्ध में जो विवाद है, दोनों तरफ से लड्डू फेंके जा रहे हैं। अगर तुम्हारे पास आंखें हों, तो तुम खूब लूट लो। मगर तुम अंधे हो! तुम लड्डू तो देखते ही नहीं। तुम अपने पत्थर उठा लेते हो। तुम्हारे पास तो पत्थर ही हैं। शंकराचार्य का अनुयायी बुद्ध के खिलाफ हो जाता है--कि उखाड़ फेंको बुद्ध धर्म को हिंदुस्तान से; कि बुद्ध के भिक्षुओं को जला देता है अग्नि में। कड़ाओं पर चढ़ा देता है। तुम्हारे पास यही है। तुम चूक ही गए। संत तो विवाद भी करते हैं, तो भी मिठाई ही बरसती है और तुम अगर सम्वाद भी करते हो, तो भी गाली-गलौच के अतिरिक्त और तुम्हारे पास है भी क्या!

'ता अला की गति नहीं जानी, गुरि गुड़ दीवा मीठा।' कबीर कहते हैंः गुरु एक ही तो बात देता है। हजार तरह से एक ही बात कहता है। नये-नये रंग, नये-नये ढंग से एक ही गीत गाता है। उसकी टेक एक है और वह टेक यह है कि किसी तरह तुम्हें आाह की यह छिपी हुई गति दिखाई पड़ जाए। यह जो सारा जगत गतिमान हो रहा है, उस गतिमान के पीछे उसका ही हाथ है। वही गत्यात्मक है। यही जिस दिन समझ में आ जाएगा, उस दिन सभी सदगुरुओं की मीठी वाणी तुम्हें समझ आ गई। वेद-कुरान-पुराण--सब समण आ गए।

'कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहब दीठा।' और जब मैंने गुरु के वचन का पूरा रस ले लिया, तो मैंने सब पा लिया। 'कहै कबीर मैंने पूरा पाया।' पूरे पाने की कसौटी क्या है? किस आदमी ने परमात्मा को पूरा पा लिया? इसकी कसौटी क्या है? इसकी कसौटी कबीर कहते हैंः 'सब घटि साहब दीठा।'

जिसको सब जगह परमात्मा दिखाई पड़ने लगे--मंदिर में मस्जिद में, गुरुद्वारे में गिरजे में, स्त्री में पुरुष में, ब्राह्मण में, शूद्र में, हिंदू-मुसलमान-इसाई में, जैने में बौद्ध में, पशुओं-पक्षियों में पत्थर-पहाड़ों में, राम में रावण में, अच्छे में बुरे में, साधु में असाधु में,--जिसे सब जगह परमात्मा दिखाई पड़ने लगे। उजाले में अंधेरे में; जिंदगी में मौत में; जिसे कोई द्वंद्व न रह जाए, उसने पूरा पा लिया।

संत कबीर के इस वचन का तात्पर्य क्या है--'समुंद समाना बूंद में'? आत्मा में परमात्मा, बूंद में सागर, अंश में पूर्ण कैसे समा सकता है?

पहले संत कबीर का यह वचन समझ लीजिए--'प्रेम गली अति सांकरी तामे दो न समाय'--बहुत संकरी गली है प्रीति की, भक्ति की। उससे संकरी और कोई गली नहीं! वहां दो न समा सकेंगे। शुरू में तो ढाई होते हैं। प्रथम चरण में तो ढाई अक्षर होते हैं; लेकिन आखिर में प्रेम ही बचता है, बाकी दो खो जाते हैं। लेकिन, दोनों को लगता है कि मैं खो गया हूं, दूसरा है। लेकिन वस्तुतः दोनों खो जाते हैं; प्रेम ही बचता है। वह जो मध्य में है, वही बचता है; दोनों सिरे खो जाते हैं। न भक्त, न भगवान, केवल भगवत्ता! न ज्ञाता, न ज्ञेय, केवल ज्ञान।

'प्रेम गली अति सांकरी, तामे दो न समाय। जब मैं था तब हरि नहीं, जब हरि है मैं नाहिं॥' इसलिए परमात्मा का मनुष्य से कभी मिलन नहीं होता, हो ही नहीं सकता। क्योंकि जब मिलन की घड़ी आती है, तब मनुष्य खो जाता है और जब तक मनुष्य होता है, तब तक मिलन की घड़ी नहीं आती।

अब संत कबीर का दूसरा वचन समझ लीजिए--*जैसे बूंद को तुम सागर में डालो तो जब तक बूंद सागर में गिर ही नहीं गई है, अभी थोड़ी दूर, थोड़ी दूर, थोड़ी दूर, तब तक वह है। सागर भी है, बूंद भी है--यह ढाई की दशा है। गिर रही है सागर की तरफ, गिरती जा रही है; लेकिन अभी बूंद है, सागर भी है; अभी बीच में थोड़ा फासला है। वह फासला प्रेम से भरा है, आकर्षण से भरा है। बूंद सागर की तरफ गिरती जा रही है, लेकिन अभी मिलन नहीं हुआ। जिस घड़ी मिलन होगा उस दिन एक रह जाएगा--न सागर होगा, न बूंद होगी। बूंद को लगेगा कि सागर बचा, सागर को लगेगा, बूंद बची।*

इसलिए कबीर एक पद में कहते हैंः हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ। बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाइ।

बूंद सागर में गिर गई, अब उसे वापस कैसे निकालें! यह एक तरफ से, कबीर की तरफ से, बूंद की तरफ से, तुम्हारी तरफ से। फिर दूसरी तरफ से भी कबीर ने बात कही हैः 'हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ। समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाइ।' समुद्र की तरफ से--समुद्र बूंद में गिर गया, अब उसे कैसे निकालें!

आत्मा में परमात्मा, बूंद में सागर, अंश में पूर्ण समा जाता है और पूर्ण में अंश समा जाता है। अध्यात्म का गणित बेबूझ है। समाना कहना भी सटीक नहीं, वस्तुतः वे दोनों सदा से एक थे, सपने में भ्रम पैदा हो गया द्वैत का, प्रतीत होने लगा कि अलग-अलग हैं। जब नींद खुली तो पाया कि अरे, सत्य एक ही है। कहां बूंद, कहां सागर! एक ओंकार सतनाम!! न संगीतज्ञ, न श्रोता, केवल ओम का संगीत है।

वह अनुभव ही ऐसा विचित्र है। भगवान श्री रतनीश ने अंत में अपना नाम बदल के ओशो रख लिया। यह नाम उन्होंने रखा है ओशनिक इक्स्पिरीयन्स पर। अंग्रेज कवि विलियम जेम्स की कविता में ओशनिक इक्स्पिरीयन्स का उल्लेख आता है--सागरीय अनुभव। बूंद में सागर अवतरित होने का अनुभव। सारी सीमाएं गायब हो गई। अनादि, अनंत, असीम का एहसास करने वाले को कहा--ओशो। बड़ा प्यारा नाम, काव्यात्मक, प्रतीकात्मक!

कबीर साहब यही कह रहे हैं--समुद्र समा गया बूंद में। यूं बौद्धिक रूप से समझने से तो समझ में नहीं आएगा। लेकिन मैं आपको निमंत्रण देता हूँ। महीने में दो बार सोमवार से रविवार तक ओशो फ्रेग्रेंस के ऑनलाइन साधना शिविर में भाग लेकर स्वयं अनुभव कीजिए। एक दिन सौभाग्य का आपके जीवन में भी आएगा जब आप कह सकोगे आत्मा में परमात्मा उतर आया। अब करें भी तो क्या करें! सच न कहें तो क्या कहें-

हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराई।
समुंद समाना बूंद में, सो कत हेरी जाई॥

इस पेपरबैक पुस्तिका में ओशो ने धर्म, नीति, सत्यम् शिवम् सुंदरम्, जीवन की कला, नई दृष्टि का जन्म, भारत का दुर्भाग्य, भारत का भविष्य आदि गूढ़ विषयों पर अपनी अंतर्दृष्टि दी है। मानव जीवन के प्रत्येक आयाम को छूता, ओशो की देशना का विराट सागर, इस पुस्तिका में लघु रूप में समाया हुआ है। ओशो कहते हैं : '*जीवन की कला जागने की कला से उपलब्ध होती है। अवेकनिंग, अवेयरनेस, होश मिल जाए, प्राण पूरे जाग कर जीवन को अनुभव करने लगें, तो प्रतिक्षण प्रभु के दर्शन शुरू हो जाते हैं, प्रतिपल उसका संगीत सुनाई पड़ने लगता है, और कण-कण में उसकी मूर्ति उपलब्ध होने लगती है, सारा जीवन एक अमृतमय तरंगों में परिवर्तित हो जाता है।*'

'ज्यों की त्यों धरि दीन्हि चदरिया'--संत कबीर के इस वचन में ऐसी कौन सी विशेष बात है कि भगवान महावीर के पंच महाव्रतों पर प्रवचन देते हुए ओशो ने इस वचन को शीर्षक चुना?

संत कबीर के इस वचन में निश्चित ही कोई विशेष बात अवश्य है। ओशो को यह भजन भी अत्यंत प्रिय रहा है। अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह, अकाम, अप्रमाद--महावीर के इन पंच महाव्रतों का शीर्षक बनने काबिल है कबीर का वचन। अद्भुत रूप से सराहनीय, मननीय है।

कबीर साहब कह रहे हैं कि मृत्यु के समय में अपनी देह रूपी चादर को ऐसी छोड़ दूंगा, जैसी जन्म में पाई थी यह सुंदर चादर। 'ज्यों की त्यों धरि दीन्हि चदरिया'--कोई दाग नहीं लगा। छोटा बच्चा जन्मता है बेदाग। फिर जिंदगी भर में हम दाग ही दाग लगा लेते हैं--हिंसा के, चोरी के, झूठ के, बेईमानी के, काम के, क्रोध के, लोभ के ईर्ष्या के--ना जाने क्या क्या धब्बे लग जाते हैं! *मौत के समय हम छोड़ जाते हैं बिल्कुल गंदी चादर। कबीर साहब कह रहे हैं, झीनी झीनी बीनी चदरिया। सोई चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, दास कबीर जतन से ओढी ज्यों की त्यों धरि दीन्हि चदरिया'।*

क्यों पंचमहाव्रत का शीर्षक ओशो ने इस वचन को चुना? गुनो, सोचो-समझो। पंच महाव्रत है--हिंसा का विपरीत अहिंसा, परिग्रह का उल्टा अपरिग्रह, काम का उल्टा अकाम, ब्रह्मचर्य, चोरी का उल्टा अचोर्य और नींद का उल्टा जागरण, अप्रमाद। ये पांच महाव्रत हैं जिनसे व्यक्ति में काम नहीं रहा, क्रोध नहीं रहा, लोभ-लालच, परिग्रह वृत्ति नहीं रही, अहंकार नहीं रहा, प्रमाद नहीं रहा। परम-होश, महाचेतना का जागरण हुआ। उसकी चादर पूरी तरह स्वच्छ हो गयी, मन से मुक्त हो गया, कोई बंधन पीछे नहीं बचा।

एक बार किसी ने ओशो से पूछा कि जब कबीर साहब ऐसा कहते हैं कि ज्यों की त्यों धरि दीन्हि चदरिया'--ऐसा लगता है कि बड़े अभिमान और अहंकार से कह रहे हैं। अपनी श्रेष्ठता बता रहे हैं, महानता की घोषणा कर रहे हैं।

ओशो ने समझायाः मैं तुम्हें सच्ची बात बताऊँ, कबीर बड़े ही विनम्र हैं, जैसी चादर ले के आये थे उससे ज्यादा पावन, पवित्र और सुगंधित करके लौटा रहे हैं। वह तो बहुत कम बता रहे हैं।

जब मैंने सुना यह उत्तर--मैं चौंक गया था। कबीर जो कह रहे हैं बहुत कम करके बता रहे हैं! जितनी मिली थी, उससे अधिक पवित्र करके लौटा रहे हैं। अतः यह वचन शीर्षक के योग्य है। पंचमहाव्रत के लिए बिल्कुल उचित ही है।

2020 में हम लोग मगहर गए थे। आपने सुना होगा गोरखपुर के पास है मगहर। कबीर साहब जिंदगी भर तो काशी में रहे। मान्यता है कि काशी में जिसकी मृत्यु होती है वह स्वर्ग जाता है। कबीर जब वृद्ध हो गए और बीमार रहने लगे तो उन्होंने कहा कि मैं यहाँ नहीं रहूँगा। लोगों ने कहाः आप कैसी बात करते हो?

लोग दूर दूर से काशी करवट लेने आते हैं। कबीर ने कहा, नहीं, मैं मगहर जाकर रहूंगा। ऐसा अंधविश्वास प्रचलित था उस समय कि जो मगहर में मरते हैं, अगले जनम में गधे बनते हैं। कबीर ने कहा कि मुझे गधा बनना मंजूर है, कम से कम अपनी वजह से तो बनूँगा। काशी की वजह से मुझे स्वर्ग नहीं जाना। ऐसा स्वर्ग या मोक्ष भी नहीं चाहिए जो काशी की वजह से मिलता हो। वह नहीं माने, जिद्द करके चले गए बुढ़ापे में, मगहर में जाकर रहे। कुछ साल बाद वहीं पर उन्होंने देह त्यागी। पवित्र करके चादर को लौटा दी। उनका मोक्ष, कैवल्य, निर्वाण पहले हो ही चुका।

कोई कामना बची नहीं जिसके अंदर, उसकी तो मुक्ति परम मुक्ति हो गयी। वह काशी में मरे कि कहीं भी मरे। वह जहाँ भी मरेगा उसका तो महापरिनिर्वाण सुनिश्चित है। जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, परिग्रह, ईर्ष्या, द्वेष में जी रहे हैं, तुम क्या सोचते हो काशी में मरकर वो स्वर्ग चले जाएंगे, मुक्त हो जाएंगे? पागल हो, इतना सस्ता है स्वर्ग? कबीर यही अंधविश्वास तोड़ने के लिए मगहर चले गए।

एक और अच्छी बात मुझे याद आई मगहर में संत विचारदास जी और अन्य संतजन, वहाँ जो समाधि की सेवा करते हैं, उनसे मुलाकात हुई। आपको पता ही होगा कबीर जी की मृत्यु के बाद उनके हिंदू और मुसलमान शिष्यों में

आपस में बंटवारा हो गया। तो आधी जगह समाधि बन गयी, आधी जगह कब्र-मजार बन गयी। बीच में एक दीवाल खड़ी हो गयी थी। जो आदमी जिंदगी भर सबको जोड़ने की कोशिश करता रहा, उसके जाते ही सामने दीवार खड़ी कर ली।

ये 600 साल पुरानी दीवार अभी तोड़ी गई है। एक तरफ जो प्रमुख संतगण समाधि की सेवा करते हैं और दूसरी तरफ जो मुसलमान भाई मजार की सेवा करते हैं, इन दोनों ने अद्भुत बुद्धिमत्ता और प्रेम का परिचय दिया है। इन्होंने बीच की वह दीवार गिरा दी--अद्भुत सराहनीय कार्य किया। हर जगह, धर्म और सम्प्रदाय चलाने वाले लोग नई-नई दीवारें खड़ी करते, मनुष्यों को बांटते हैं, विभाजित करते हैं, राजनीति खड़ी करते हैं। कबीर साहब के शिष्यों ने ऐसा अभूतपूर्व कार्य किया है कि मेरे हृदय में उनके प्रति बहुत आदर उत्पन्न हो गया है। कबीर का यह पद सार्थक कर दिखाया है-

झीनी झीनी बिनी चदरिया।
सोई चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ी के मैली किनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया॥

ऐसा कौन सा रस है जिसे पीकर संत कबीर को खुमारी चढ़ जाती है और वे कहते हैं--'पीवत रामरस लगी खुमारी'?

ओशो की एक प्रश्नोत्तर श्रंखला कबीर साहब के इस वचन से आरंभ होती है- 'पीवत रामरस लगी खुमारी'। वह रस हमारे भीतर ही चेतना से उत्पन्न होता है। वह हमारे आंतरिक चैतन्य का स्वभाव ही है। कबीर कहते हैं-

बहुत मोल महंगै गुड़ पावा।
लै कसाब रस राम चुवावा॥
कहैं कबीर फाबी मतवारी।
पीवत रामरस लगी खुमारी॥

रामरस इसलिए कहते हैं, क्योंकि भीतर की अनाहत ध्वनि कुछ-कुछ ऐसी है जैसे कोई जल्दी जल्दी राम, राम, राम, अथवा ओम, ओम, ओम जप रहा हो। धीरे-धीरे राम का रा, ओम का ओ गायब हो जाए और गूंजती हुई हमिंग साउंड मममममम ही रह जाए।

इस नाद को राम-नाम कह सकते हैं, सतनाम कह सकते हैं, ओम या नाम कह सकते हैं। कुछ संतों ने तो परमात्मा की जगह नाम का ही उपयोग किया है। कहाः तुझसे बड़ा तेरा नाम रे। वास्तव में भीतर की वह जो ध्वनि है वह एग्ज़ैक्ट्ली तो इनमें से किसी से नहीं मिलती-जुलती, फिर भी काफी निकट है। तीन शब्द बहुत करीब हैं--नाम, राम, ओम। इनके पीछे का जो म है वह सबमें है। एक प्रकार की हमिंग साउन्ड, फूलों के आसपास मंडराते भौरों की गूंज के समान है। उसको नाम रस भी कहा है, किसी ने रामरस भी कहा है।

कबीर साहब कहते हैं: बहुत मोल महंगै गुड़ पावा। लै कसाब रस राम चुवावा॥ कहैं कबीर फाबी मतवारी। पीवत रामरस लगी खुमारी॥ बड़ा महंगा गुड़ था वह जिससे इसे बनाया है। शराब बनाने की प्रक्रिया में कार्बोहाइड्रेट्स का इस्तेमाल होता है। पुराने जमाने में गुड़ का इस्तेमाल हुआ करता था। गुड़ तो सस्ता होता था, फिर क्यों महंगा कह रहे हैं? हम गहन आध्यात्मिक मूर्छा में है। परत दर परत नींद की जमी हुई है। उनको तोड़ के जागना कठिन कार्य है, महंगा सौदा है। लेकिन जो व्यक्ति जाग जाता है उसे परमात्मा की परम ध्वनि सुनाई पड़ती है--जिसे हम रामरस कह

सकते हैं, ओम ध्वनि कह सकते हैं, अनाहत नाद या प्रणव कह सकते हैं। भिन्न भिन्न नामों से ज्ञानियों ने, संतों ने पुकारा है। उसको पीकर फिर एक मदहोशी सी छा जाती है--खुमारी। नानक ने जिसके लिए कहा है, नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात। भांग धतूरा नानका उतर जाए प्रभात।

प्रश्नोत्तर प्रवचनमाला के अंतर्गत पुणे में ओशो द्वारा दिए गए दस प्रवचन—धर्म, संन्यास, ध्यान के रहस्यों का उदघाटन और अंध-श्रद्धा पर कुठाराघात ओशो की इस प्रवचनमाला के प्रमुख स्वर हैं। भारत की सामाजिक एवं धार्मिक मूढ़ताओं ने किस प्रकार इस देश को ध्यान की खुमारी, प्रेम की खुमारी से वंचित रखा है यह ओशो ने अपनी वाणी द्वारा स्पष्ट किया है।

'ढाई आखर प्रेम का'--संत कबीर के इस सुप्रसिद्ध वचन पर ओशो की कौन सी किताब प्रकाशित हुई है?

ढाई आखर प्रेम का—कबीर वचन पर आधारित इस शीर्षक से प्रकाशित किताब में 150 पत्र संकलित हैं जो ओशो ने अपने प्रेमियों, शिष्यों, साधकों, मित्रों को लिखे हैं। पुस्तक का अंतिम पत्र इस प्रकार हैः-

प्रिय दलजीत,

प्रेम। मैं जानता हूं कि तुम जो कहना चाहते हो, वह कह नहीं पाते हो।

लेकिन, कौन कह पाता है।

प्राणों के सागर के लिए शब्दों की गागर सदा ही छोटी पड़ती है।

जीवन सच ही एक अबूझ पहली है।

लेकिन, उन्हीं के लिए जो उसे बूझना चाहते हैं।

पर बूझना आवश्यक कहां है?

असली बात है जीना, बूझना नहीं।

जीवन जियो और फिर जीवन पहेली नहीं है।

फिर फिर जीवन एक रहस्य।

पहेली जीवन को गणित बना देती है।

गणित चिंता और तनाव को जन्माता है।

रहस्य जीवन को बना देता है काव्य।

और काव्य है विश्राम।

काव्य है रोमांस।

और जीवन के साथ जो रोमांस में है, वही धार्मिक है।

तर्क जीवन को समस्या की भांति देखता है।

प्रेम जीवन को समाधान जानता है।

इसलिए तर्क अंततः उलझाता है।

और प्रेम समाधि बन जाता है।

समाधि अर्थात पूर्ण समाधान।

इसलिए कहता हूं कि जीवन को तर्क का अभ्यास मत बनाओ; जीवन को बनाओ प्रेम का पाठ।

ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।

रजनीश के प्रणाम

30-12-1970

अन्यत्र ओशो समझाते हैंः- पोथी पढ़-पढ़ कर अनेक लोग मर जाते हैं; जीवन भर पढ़ते रहते हैं और मर जाते हैं, फिर भी ज्ञान को उपलब्ध नहीं होते हैं। क्योंकि ज्ञान का कोई संबंध विचार से नहीं है। विचार को तो उपलब्ध हो जाते हैं, बहुत विचार को उपलब्ध हो जाते हैं। जितना तुम पढ़ोगे, सुनोगे, संग्रह करोगे-स्मृति भारी होती जाएगी। तुम बहुत कुछ जान लोगे बिना जाने, बिना पहचाने। केवल शब्दों के कारण तुम्हें यह भ्रांति आ जाएगी कि मैं ज्ञानी हो गया हूं।

'पोथी पढ़ पढ़ जग मुवा, पंडित हुआ न कोय। ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।'

कबीर के लिए पांडित्य की परिभाषा ज्ञान की परिभाषा है-जिसने प्रेम के ढाई अक्षर पढ़ लिए हैं। और प्रेम के ढाई अक्षर पढ़ने का कोई उपाय पोथी में नहीं है; जीवन की पोथी में ही पढ़ना पड़े; जीवन के विद्यालय में ही आना पड़े; जीवन के प्रांगण में ही वे ढाई अक्षर पढ़े जा सकते हैं।

ढाई अक्षर--हिंदी में जो शब्द है--प्रेम, उसमें ढाई अक्षर हैं; लेकिन कबीर का मतलब गहरा है। जब भी कोई व्यक्ति किसी के प्रेम में गिरता है, तो वहां ढाई अक्षर प्रेम के पूरे होते हैं। एक तो प्रेम करनेवाला--एक; जिसको प्रेम करता है वह--दो; और दोनों के बीच में कुछ है, अज्ञात--वह ढाई। और उसे क्यों कबीर आधा कहते हैं? ढाई क्यों? तीन कह सकते हैं। आधा कहने का कारण है और बड़ा मधुर कारण है। कबीर कहते हैं कि प्रेम कभी पूरा नहीं होता, कितना ही पूरा होता जाए। तुम कभी तृप्त नहीं होते। कभी ऐसा नहीं लगता कि बस, आ गई पूर्ति, संतुष्ट हो गए। प्रेम कितना ही होता जाए, अधूरा ही बना रहता है। वह परमात्मा जैसा है--कितना ही विकसित होता जाए, पूर्ण से पूर्णतर होता जाता है, फिर भी विकास जारी है। जैसे प्रेम का जो अधूरापन है, वह उसकी शाश्वतता है।

इसे ध्यान में रखना कि जो भी चीज पूरी हो जाती है, वह मर जाती है। पूर्णता मृत्यु है; क्योंकि फिर बचा नहीं कुछ करने को, होने को कुछ बचा नहीं, आगे कोई गति न रही। जो भी चीज पूर्ण हो गई, वह मर गई। मर ही जाएगी, क्योंकि फिर क्या होगा? सिर्फ वही जी सकता है शाश्वत, जो शाश्वत रूप से अपूर्ण है, अधूरा है, आधा है; और तुम कितना ही भरो, वह आधा रहेगा। आधा होना उसका स्वभाव है। तुम कितने ही तृप्त होते जाओ, फिर भी तुम पाओगे कि हर तृप्ति और अतृप्त कर जाती है। जितना तुम पीते हो, उतनी ही प्यास बढ़ती चली जाती है। यह ऐसा जल नहीं है कि तुम पी लो और तृप्त हो जाओ। यह ऐसा जल है कि तुम्हारी प्यास को और जलाएगा। इसलिए प्रेमी कभी तृप्त नहीं होता। और, इसलिए उसके आनंद का कोई अंत नहीं है। क्योंकि आनंद का वहीं अंत हो जाता है, जहां चीजें पूरी हो जाती हैं।

कामी तृप्त हो सकता है, प्रेमी नहीं। काम का अंत है, सीमा है। प्रेम का कोई अंत नहीं, कोई सीमा नहीं। प्रेम आदि-अनादि है। वह ठीक परमात्मा के स्वरूप का है। इस जगत में प्रेम परमात्मा का प्रतिनिधि है, समय की धारा में समयातीत का प्रवेश है, मनुष्य की दुनिया में अतिमानवीय की किरण का आगमन है। प्रेम प्रतीक है यहां परमात्मा का और उसका स्वभाव परमात्मा जैसा है।

परमात्मा कभी पूरा नहीं होगा, नहीं तो जगत समाप्त हो जाएगा। उसकी पूर्णता बड़ी गहन अपूर्णता जैसी है। उपनिषद कहते हैं कि उस पूर्ण से पूर्ण को निकाल लो तो भी वह पूर्ण ही रहता है। उस पूर्ण में और पूर्ण को डाल दो, तो भी वह उतना ही रहता है, जितना था। वह जैसा है, वैसा ही है; उसमें घट-बढ़ नहीं होती। प्रेम भी जैसा पहले दिन होता है, वैसा ही अंतिम दिन भी होगा। जो चुक जाए, उसे तुम प्रेम ही मत समझना; वह कामवासना रही होगी। जिसका अंत आ जाए, वह शरीर से संबंधित है। आत्मा से जिस चीज का भी संबंध है, उसका कोई अंत नहीं है। शरीर भी

मिटता है, मन भी मिटता है; आत्मा तो चलती चली जाती है। वह यात्रा अनंत है। मंजिल कोई है नहीं, क्योंकि अगर मंजिल हो तो मृत्यु हो जाएगी।

तो कबीर रहते हैंः ढाई आखर प्रेम का! वे प्रेम के ढाई अक्षर की तरफ इशारा तो करते ही हैं, गहरा इशारा है प्रेम के आधेपन का। प्रेमी और प्रेयसी के बीच एक अदृश्य धारा है, एक अदृश्य आंदोलन है, एक सेतु है जो दिखाई नहीं पड़ता, जिससे वे दोनों जुड़ गए हैं और एक हो गए हैं। 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।'

कबीर साहब पर ओशो ने एक प्रवचनमाला दी है--'गूंगे केरी सरकरा'--इसका भावार्थ क्या है?

कबीर साहब पर ओशो ने एक प्रवचनमाला दी है- 'गूंगे केरी सरकरा'। साथ ही दो अन्य पुस्तकों का शीर्षक रखा है- 'अकथ कहानी प्रेम की' तथा 'ढाई आखर प्रेम का'। प्रेम मार्ग की महिमा गाने वाले ये तीनों शीर्षक एक ही पद पर आधारित हैं--

पोथी पढ़ पढ़ जग मुवा, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय॥
अकथ कहानी प्रेम की, कछु कही न जाय।
गूंगे केरी सरकरा, खाइ और मुसकाय॥

प्रभु को जाना जाता है मौन में, और बताना पड़ता है बोलकर। अनुभूति घटती है निशब्द में, निर्विचार जागरण में। अभिव्यक्ति होती है शब्दों एवं विचारों के माधयम से। इसलिए कबीर कहते हैंः 'गूंगे केरी सरकरा'।

ओशो समझाते हैं कि परमात्मा को जानकर तुम ऐसे हो जाओगे जैसे गूंगे ने मिठाई खाली, और--'खाई और मुस्काई।' खाली है, कह सकता नहीं, मुस्काता है। तुम चुप हो जाओगे और तुम्हारा रोआं-रोआं मुस्कायेगा। क्योंकि यह मौन तुम्हारी तरफ से मौन है, तुम्हारी तरफ से शून्य जैसा है; उसकी तरफ से पूर्ण जैसा है। इधर तुम खाली हुए उधर भर दिये गये। इधर तुमने जगह बनाई, सिंहासन तत्क्षण भर जाता है--अतिथि आ गया भीतर! तुम कह तो न सकोगे, क्या हुआ है; फिर भी तुम्हारा रोआं-रोआं कहेगा--'खाई और मुस्काई, गूंगे केरी सरकरा।'

'वेद कहै सरगुन के आगे निरगुन का विसराम। सरगुन निरगुन तजहु सोहागिन देख सबहि निजधाम।' कबीर कहते हैंः वेद कहता है कि सगुण के आगे निर्गुण, जहां सगुण समाप्त होता है वहां निर्गुण शुरू होता है; जहां आकार समाप्त होता है, स्वभावतः वहां निराकार शुरू होता है। 'सरगुन निरगुन तजहु सोहागिन।' शब्द बड़ा प्यारा उपयोग किया है उन्होंने--सोहागिन। कबीर जिन अर्थों में सुहागिन कह रहे हैं, वह यह हैः जिसे पति मिल गया, वह सुहागिन है, और जिसे अभी पति मिला नहीं, वह अभागिन है।

'प्यंड ब्रह्मांड छाड़ि जे कथिये, कहै कबीर हरी सोई।'--पिंड को भी छोड़ दो, ब्रह्मांड को भी छोड़ दो; आकार को भी छोड़ दो, निराकार को भी छोड़ दो; गुण को भी, निर्गुण को भी; रूप को, अरूप को भी, और फिर कहो--'कहै कबीर हरि सोई।' और अगर फिर कुछ कह पाओ तो हरि के संबंध में सच होगा।

रैदास ने कहा हैः 'ऐसा कहो तो भी नहीं। वैसा कहो तो भी नहीं। 'है हरि अस जस कुछ तैसा।' ऐसा कहो तो भी नहीं है, वैसा कहो तो भी नहीं है; और ऐसा और वैसा कुछ है। है हरि अस जस कछु तैसा।'

कबीर कह रहे हैं कि यह कहो कि निर्गुण है, कहो कि सगुण है--न कह पाओगे। कहो ब्रह्मांड, कहो क्षुद्र, कहो विराट--न कह पाओगे। छोड़ दो दोनों; कहो कुछ--'कहै कबीर हरि सोई'--और अगर तुम कुछ कह पाओगे तो वही हरि है। कुछ न कह पाओगे; तुम परम मौन हो जाओगे--वही है। *मौन ही कहेगा, क्योंकि दोनों को अगर छोड़ दिया तो कहने को कुछ बचता नहीं। न निर्गुण, न सगुण; न पास, न दूर; न ऐसा, न वैसा--फिर कहोगे क्या? फिर तुम मौन हो*

जाओगे। फिर कहना न होगा। कथन खो जायेगा। शब्द दूर पीछे छूट जायेंगे--धूएं की लकीरों जैसे। तुम सन्नाटे में आ जाओगे। तुम अवाक हो जाओगे। तुममें कोई बोल न फूटेगा। तुम अबोल हो जाओगे।

ओशो की यह अंग्रेजी व्याख्यानमाला कबीर साहब के किस पद पर आधारित है: 'एक्सटैसीः द फॉरगॉटन लैंग्वुएज'?

'एक्सटैसीः द फॉरगॉटन लैंग्वुएज'--ओशो की यह अंग्रेजी व्याख्यानमाला कबीर साहब के इस प्यारे पद पर आधारित है-

मस्त हुआ तब क्यों बोले।

हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले॥

सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।

यह जो सुरति की मदवा है, एक्सटैसी है, हमारे भीतर इसे निर्मित करने वाली कलारी, मधुशाला मौजूद है। हम उसे भूल गए हैं। इसलिए बोल रहे हैं--फॉरगॉटन लैंग्वुएज'--भूल चुकें हैं आनंद की भाषा। मगर कहीं ना कहीं याद बाकी है तभी तो हम खोज रहे हैं आनंद को बाहर। तभी लोग इतने नशे के लिए दीवाने हैं बाहर। नशा मौजूद है परमात्मा का हमारे भीतर, हमारी ही जीवन ऊर्जा के उत्थान में। जब जीवन-शक्ति उर्ध्वगामी होगी, बाहर से मुक्त होगी, अंतरगामी होकर स्वयं की ओर लौटेगी, तब उसका ऊपर के चक्रों पर जाना होगा। सर्वोपरि चक्र है सहस्रार। वहाँ जब हमारी ऊर्जा पहुंचकर ठहर जाती है, तब खुमारी पैदा होती है, आंतरिक नशा पैदा होता है--डिवाइन इनटॉक्सिकेशन।

नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात। ऐसा कहते हैं नानक। पीवत राम-रस लगी खुमारी। ऐसा कहते हैं कबीर। उसी खुमारी कि बात कर रहे हैं ओशो इस किताब में। लेकिन हम उस मस्ती को भूल गए हैं, अपने ही स्वभाव को विस्मृत कर गए हैं।

कहते हैं कबीर साहब कि हलकी थी तब चढ़ी तराजू। क्यों यह मस्ती भूल गए हम? हमारी जीवन ऊर्जा बाहरी संसार के विषयों में लग गयी। तराजू हल्की हो गई, डावांडोल हो गई, संतुलन खो बैठी। हमारा जो चैतन्य है, तराजू के समान है। तराजू जब तक हल्की है, तब तक तौलती है, तुलना, स्पर्धा, प्रतियोगिता करती है। पूरी भई तब क्यों तोले। फिर तुलना बंद कर देती है। तुलना और कंपैरिजन में जीने वाला इंसान दुखी होता रहता है। ईर्ष्या, महत्वाकांक्षा, दूसरों की नकल, न जाने कहाँ कहाँ फंस जाता है और मस्ती दूर, पीछे छूट जाती है। कोई जलन में जीकर मस्ती में रहेगा। दुख के कांटे बो रहा है अपने लिए। मस्ती तो भूल ही जाने वाला है।

जब भी हम कंपैरिजन छोड़कर अंतर्यात्रा करते हैं तो वहां परमात्मा का संगीत गूंजता सुनाई देता है। भीतर चैतन्य प्रकाश से भरा है। आनंद ही आनंद है, सत्यं शिवं सुंदरम है। फिर आनंद और मस्ती में कौन तुलना करेगा? अहंकार छोड़ने का एक ही अर्थ होता है कि तुमने अपनी तुलना करनी बंद कर दी। अहंकार छोड़ने का एक ही अर्थ होता है कि तुमने अपने शून्यभाव को अंगीकार किया, और उसी शून्यभाव में तुम अद्वितीय हो गए।

तुम्हारी कोई तुलना हो भी नहीं सकती, तुम जैसा आदमी कभी पृथ्वी पर हुआ ही नहीं और न फिर कभी होगा। तुम्हारे अंगूठे का निशान तुम्हारे ही अंगूठे का निशान है। सारी दुनिया में इतने लोग हो चुके हैं--अरबों-खरबों--मगर किसी के अंगूठे का निशान तुम्हारे अंगूठे का निशान नहीं है। और तुम्हारे व्यक्तित्व का ढंग भी तुम्हारा ही है। तुम तुलनीय नहीं हो। तौले कि झंझट में पड़े। तौलो मत।

तुलना मत करो, कंपेरीजन मत करो। तुम जैसे हो, उसे स्वीकार कर लो। तुम जैसे हो, वैसा होना पर्याप्त है। ऐसा तुम्हें प्रभु ने बनाया, इसको तुम धन्यभाग मानो। इसके लिए धन्यवादी होओ। और इस शून्य में राजी हो जाओ। तुमसे फिर बहुत होगा, लेकिन वह अहंकार के कारण नहीं होगा, वह तुम्हारी सहज प्रकृति के कारण होगा।

जैसे नदियां सागर की तरफ बहती हैं, ऐसा तुमसे भी बहुत बहेगा--हो सकता है गीत रचा जाए, मूर्ति बने--होगा ही, क्योंकि जहां ऊर्जा है वहां कुछ घटना घटती रहेगी। लेकिन उस घटना के घटने में न तो चिंता रहेगी, न आपाधापी रहेगी, न दूसरों से प्रतियोगिता रहेगी, न स्पर्धा रहेगी।

अभी तो तुम इस अहंकार के नाम पर सिर्फ अपने भीतर के शून्य को ढांकते हो, घाव को ढांकते हो--जैसे घाव पर कोई फूल रख ले। फिर घाव बड़ा होता जाता है तो और बड़े फूल चाहिए, और बड़े फूल चाहिए। फिर धीरे-धीरे ऐसा हो जाता है कि घाव को छिपाने में ही जिंदगी बीत जाती है। घाव छिपता नहीं और जिंदगी समाप्त हो जाती है। और जिससे तुम घाव को छिपा रहे हो, वही तुम्हारी फांसी बन जाती है। किसी को किसी ढंग से अपना अहंकार भरना है, किसी को किसी और ढंग से, अंततः जीवन उसी अहंकार के भरने की कोशिश में नष्ट हो जाता है।

अहंकार और दुखी आदमी बहुत बोलता है। जब जीवन में आनंद आ जाता है तब मौन छा जाता है। आनंदित आदमी क्या बोले? स्वास्थ्य के बारे में क्या चर्चा हो? बीमार आदमी बहुत बोलेगा, रोगों की चर्चा में रस लेगा। ऐसे ही अज्ञानी लोग बोलते हैं। जिसको ज्ञान हो गया इसके भीतर प्रभु का मौन संगीत छिड़ जाता है। वह अपनी मस्ती में, आनंद में रहने लगता है। फिर तुलना छूट जाती है और बकवास भी छूट जाती है। ये सार बातें आपस में जुड़ी हैं। मस्त हुआ तब क्यों बोले!

'मैं कहता आँखन देखी' ऐसा कहकर कबीर साहब और ओशो क्या बताते हैं?

कबीर का पूरा वचन इस प्रकार है-

तू कहता कागद की लेखी मैं कहता आँखन देखी।

मैं कहता सुरझावन हारि, तू राख्यौ उरझाई रे॥

ओशो ने इसे अपनी किताब का शीर्षक चुना। इसमें पुस्तकीय, शाब्दिक, भाषागत, दूसरों से उपलब्ध उधार ज्ञान की चर्चा नहीं हो रही है। उन्होंने स्वयं के बारे में, आत्म-अनुभव, स्व-बोध से प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञान बताने का प्रयास किया है।

संत दरिया साहब के वचन भी इसी तरफ संकेत करते हैं-

कानों सुनी सो झूठ सब, आंखों देखी सांच

दरिया झूठ सो झूठ है, सांच सांच सो सांच।

कबीर साहब यही कहना चाह रहे हैं कि मैं जो तुमसे कह रहा हूँ वह पढ़-लिख कर नहीं, कहीं प्रवचन में सुनकर नहीं, सोच विचारकर नहीं, बल्कि जो जाना है स्वयं, देखा है अपने अंतरतम में, वही बता रहा हूँ। ओशो ने भी कुछ ऐसी अद्भुत बातें इस 'मैं कहता आँखन देखी' नामक प्रवचन श्रृंखला में बताई हैं। वास्तव में बड़ी अंतरंग वार्ताएं है। कोई दस-बीस मित्रों के साथ। उस समय एक प्रसिद्ध कलाकार थे, अक्सर धार्मिक फिल्मों में हीरो बनते थे--महिपाल जी। उन्होंने सवाल पूछे ओशो से। गोष्ठी में चर्चा चलते चलते पिछले जन्मों की बात आ गयी। ओशो ने संक्षेप में अपने पिछले जन्म समय की साधना का वर्णन किया। कैसे उनका मर्डर हुआ था? फिर उसकी वजह से इस जन्म में प्रथम दिन वह भूखे रहे। उस मित्र मंडली में ये सारी बातें, बड़ी ही गोपनीय बातें, अंतरंग बातें उन्होंने बताईं जो इस किताब में संकलित हैं।

कबीर साहब काशी में रहते थे, पंडितों की नगरी में। वहाँ सभी बड़े बड़े होशियार और ज्ञानी, शास्त्र सिद्धांत जानने वाले विद्वान रहते थे। तू कहता कागद की लेखी मैं कहता आँखन देखी--कबीर साहब तो अनपढ़ थे। कहते हैं स्याही, कागज, कलम में कभी हाथ नहीं लगाया, दस्तखत करना भी नहीं आता। महा-पंडितों से कह रहे होंगे तू कहता कागद की लेखी मैं कहता आँखन देखी। मैं कहता सुरझावन हारि, तू राख्यौ उरझाई रे॥ *तुम सिद्धांत और वाद विवाद में सबको उलझा रहे हो। मैं सुलझाने वाली सहज, सुगम बात बता रहा हूँ, बिल्कुल सीधी सरल बात है। लेकिन आश्चर्य की बात है कि बड़े बड़े ज्ञानी है, कठिन क्लिष्ट भाषा के विद्वान हैं, उन्हें बात समझ में नहीं आती।*

संत दरिया में भी कुछ ऐसी ही बात कही है। अनुभव से, प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा अपने भीतर खुद जाना है, उसके बारे में बता रहे हैं और निश्चित रूप से बताना बड़ा मुश्किल है। जाना है 'एक' को। मगर बताना है उस द्वन्द्वात्मक भाषा में। जाना है मौन में, शून्य में, निर्विचार सजगता की अवस्था में। मगर उस एक्सपीरियंश को जब एक्सप्रेस करेंगे तो विचारों में बताना होगा। देखते हैं कैसी मुश्किल है? निशब्द में जिसको जाना है, उसे शब्दों में व्यक्त करना होगा। निर्विचार में जिसे पहचाना, अनुभूति की, उसे विचारों में अभिव्यक्ति देनी पड़ेगी। क्या लगभग पूर्णतः असंभव कार्य नहीं है? लेकिन यह एक करुणा है सद्गुरुओं की, कि फिर भी वे बताने का प्रयास करते हैं। मैं कहता आंखन देखी किताब में कुछ ऐसी ही बातें बताई हैं जो बताई नहीं जा सकतीं।

'चेति सकै तो चेत' कहकर कबीर साहब और ओशो किस नींद की ओर संकेत करते हैं?

'चेति सकै तो चेत' शीर्षक वाली पुस्तक का संकलन स्वयं मैंने और माँ अमृत प्रिया जी ने किया है। ओशो की यह किताब पहली बार 1979 में प्रकाशित हुई। कबीर साहब का पूरा वचन इस प्रकार है-

बिन रखवाले बाहिरा, चिड़ियें खाया खेत
आधा परधा ऊबरै, चेति सकै तो चेत।

जैसे कोई रखवाला सोया हुआ हो तो खेत चिड़िया खा जाएंगी। सब बर्बाद हो जाएगा। ऐसा ही हमारा जीवन बर्बाद हो रहा है। माटी कहे कुम्हार सूं तू का रौंधे मोहे, इक दिन ऐसा आएगा, मैं रौंधूंगी तोहे। शरीर तो नष्ट होगा ही होगा, लेकिन अगर हम चेत गए तो अमर आत्मा का अनुभव भी हो सकता है। यह कौन सी चेतना की बात कर रहे हैं? हम समझते हैं कि हम तो जागे हुए हैं और कौनसा जागरण? *एक और जागरण है--जागने में भी जागना। जैसे रात नींद पूरी हो जाती है, हम सुबह उठते है, निद्रा से जागृति में आते हैं, ऐसे ही एक महाजागरण और संभव है। जो हमारा दैनंदिन का जागरण है, यह परम-जागरण नहीं है। काम चलाऊ है।*

हम एक यंत्र मानव की तरह, रोबोट की तरह जी रहे हैं। रोबोट भी सब कुछ कर लेता है। इसका यह मतलब नहीं कि उसके भीतर कॉन्शसनेस है। वह तो एक मशीन माल है। हम में से अधिकांश लोग अपने सारी उम्र एक मशीन की भाँति जीते रहते हैं। एक और गहन जागरण संभव है। महाजागरण जिसको कहते हैं--बुद्धत्व। बुद्ध का मतलब होता है पूर्णजागृत। होशपूर्ण तो निश्चित रूप से जैसा जीवन हमारा है, यह ऐसा है जैसे एक शराबी लड़खड़ाता हुआ, रात को शराबघर से चलता चलता अपने आखिर अपने घर पहुँच ही जाता है। कभी भटकता है, कहीं गिरता है, टकराता है, चोट खाता है मगर पहुँच ही जाता है घर। उससे कहो कि तुम बेहोश हो। मानने तैयार नहीं होता। *कोई शराबी कभी नहीं मानता कि मैं बेहोश हूँ। इसका काम चलाऊ होश, बहुत अच्छा होश नहीं कहा जा सकता। इससे ज्यादा उच्चतर होश संभव हैं।*

हम जिसे होश कह रहे हैं, हम खुद भी जानते हैं कि इससे ज्यादा होश की अवस्था होती है। अचानक अभी एक बम विस्फोट की आवाज हो जाए या भूकंप आ जाए तो क्या हम और ज्यादा चैतन्य नहीं हो जाएंगे? खतरे के क्षणों में

हम बहुत सजग हो जाते हैं। काश हम वैसा ही सजग विश्राम के क्षणों में हो सकें! उसीका नाम ध्यान है, सुमिरन है, समाधि है।

कबीर साहब, सदगुरु ओशो और सभी संत उस तरफ इशारा करते हैं कि जागो। चेत सको तो चेतो। ध्यान का मतलब होश साधो। और ज्यादा होश से भरो। जितना हमारा होश है, इतना पर्याप्त नहीं है। इससे संसार का काम तो चलता है लेकिन अपने भीतर स्वयं के होने का एहसास नहीं होता। भीतर वह जो प्रभु विराजमान है, उसका पता नहीं चलता। परमात्मा का पता नहीं चलता। उसकी आवाज--अनहद बाजे ढोल रे--वह नहीं सुनाई देती। थोड़ा और ज्यादा होश हमें साधना होगा। 'चेति सकै तो चेत' शीर्षक इसी आध्यात्मिक जागरण की ओर संकेत करता है।

कबीर साहब के किस वचन को ओशो ने अपनी अंग्रेजी व्याख्यानमाला का शीर्षक बनाया है- 'द गेस्ट' अर्थात मेहमान?

कबीर साहब का पूरा वचन है--
जैसे तिल में तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साईं तुझ में, जाग सके तो जाग।
जैसे तिल के बीज में, सरसों या मूंगफली में भीतर तेल है किंतु दिखाई नहीं देता फिर भी मौजूद है। चकमक पत्थर में आग छुपी है ठीक ऐसे ही तेरा साईं तुझमें। तेरा प्यारा परमात्मा तुझमें ही है। बस तू जरा सा जागकर अंदर देख ले।

अगर हम सो रहे हैं तो उसका पता नहीं चल रहा, वरना साईं हमारे भीतर ही है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कबीर साहब के वचनों का जब अंग्रेजी में ट्रांसलेशन किया तो साईं शब्द के लिए उन्होंने ट्रांसलेशन किया है--'गैस्ट' यानी मेहमान और उसके पीछे भी एक बड़ा महत्वपूर्ण कारण है। मेहमान को हम कहते हैं अतिथि। पुराने जमाने में मोबाइल और टेलीफोन तो थे नहीं, पत्राचार संभव नहीं था। अचानक ही कोई प्रगट हो जाता था मेहमान। बिना सूचना, बगैर तिथि बताए--इसलिए उसका नाम पड़ गया अतिथि। अ-तिथि। बिना तारीख।

ठीक ऐसे ही जब वह कोई व्यक्ति भीतर जागता है अर्थात ध्यानपूर्ण होता है तब अचानक उसे पता चलता है कि अरे, परमात्मा आया हुआ है! इसलिए अतिथि, मेहमान, गेस्ट। साईं शब्द के लिए इससे ज्यादा प्यारा शब्द अंग्रेजी में और क्या हो सकता था? तो रवीन्द्रनाथ टैगोर ने यही चुना। सतगुरु ओशो ने उसी को स्वीकार किया और उसी आधार पर 'गेस्ट' अंग्रेजी प्रवचनमाला का शीर्षक रखा।

हम सब मनुष्य, परमात्मा के बीज हैं। बीच के अंदर वृक्ष छुपा है। हाँ, थोड़ा सा माहौल चाहिए, भूमि मिल जाए, पानी मिल जाए, खाद मिल जाए फिर अंकुर निकल आएगा। वृक्ष की वृद्धि होने लगेगी, शीघ्र ही पुष्पित पल्लवित हो जाएगा। फल लग जाएंगे। ठीक ऐसा ही हमारा जीवन है। अकेले बीज रूप में तो कंकड़ पत्थर जैसा लगता है किंतु यह पुष्पित पल्लवित हो सकता है। उस जीवंतता की तरफ इशारा है। मेहमान कोई और नहीं, हमारी प्रसुप्त संभावना है। एक सोई हुई पॉसिबिलिटी जाग सकती है। तेरा साईं तुझमें जाग सके तो जाग। वह मेहमान रूपी परमात्मा कहीं बाहर से नहीं आएगा। वह भीतर विराजमान है, बस हमको थोड़ा जागना है, अपने आप को झकझोरना है। आत्मा ही परमात्मा है। स्व में सर्व उपस्थित है। अहं में ब्रह्म का वास है। अणु में विराट मौजूद है।

कबीर साहब बारंबार संबोधन करते हैं- 'सुनो भाई साधो'। ओशो ने इस साधारण से दिखने वाले संबोधन को अपनी पुस्तक का टाइटल क्यों चुना?

साधारण सा दिखने वाला यह संबोधन साधारण नहीं है। कबीर साहब भांति-भांति के संबोधन करते हैं। किसी पद में वह कहते है, भाई। तब साधारण जनों से बात कर रहे हैं जो साधक नहीं है। कभी कहते हैं साधु। सुनो भाई साधो। यानी साधक जो आध्यात्मिक पथ पर चल पड़ा है, साधना में लग गया है, उससे बात कर रहे हैं। कभी कहते है सुनो रे संतो। उन लोगों से बात कर रहे हैं जो सिद्ध हो चुके हैं। कुछ वचन अपनी पत्नी के नाम हैं, सुनो रे लोई। बहुत आत्मीयता हो, उसी से वैसी बात कही जा सकती है। और कभी-कभी तो कबीर साहब ऐसी बात कहते हैं जो केवल स्वयं से ही कह सकते हैं। अपने आप को ही संबोधन करके कहते हैं, क्योंकि और तो कोई समझ ही नहीं सकेगा। ये सारे संबोधन सिर्फ संबोधन नहीं हैं, इशारे हैं कि किस से बात कर रहे हैं? जब साधु शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, तब उसका मतलब कोई गहन साधना का सूत्र दे रहे हैं। उदाहरण के लिए--

रस गगन गुफा में अजर झरै।
बिन बाजा झनकार उठे जहां, समुझि परै जब ध्यान धरै॥
बिना ताल जहं कंवल फुलाने, तेहि चढ़ि हंसा केलि करै।
बिन चंदा उजियारी दरसै, जहं तहं हंसा नजर परै॥
दसवें द्वार तारी लागी, अलख पुरुष जाको ध्यान धरै।
काल कराल निकट नहिं आवै, काम-क्रोध-मद-लोभ जरै॥
जुगत-जुगत की तृषा बुझानी कर्म-कर्म अध-व्याधि टरै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय कबहूं न मरै॥

कबीर साहब यहां रस, गगन, गुफा, सहस्त्रार आदि रहस्यों का वर्णन कर रहे हैं। बिन बाजा झंकार उठे, अर्थात् जहाँ अनहद गूंजता है, ओंकार का स्वर सुनाई देता है। जहाँ बिन चंदा उजियारी है, बिना स्रोत की रौशनी है। साधारण जन से ये भीतरी बातें नहीं कही जा सकतीं। यह तो जो साधनारत हैं, ध्यान में डूब रहे हैं, उनसे कह रहे हैं। कहै कबीर सुनो भाई साधो, ऐसा व्यक्ति अमृत को प्राप्त हो जाता है। फिर वह कभी नहीं मरता। शरीर तो मरेगा लेकिन उसने अपने अमृत चैतन्य को जान लिया। साधु का अर्थ है, वह जो मुमुक्षा से भरा है, साधना में संलग्न है।

हमारे भीतर जानने की जिज्ञासा तीन प्रकार की होती है। पहली, बच्चों जैसा कुतूहल की वृत्ति, कि कुछ भी पूछ लिया। वस्तुतः कुछ जानने से मतलब भी नहीं है। उत्तर सुनने की भी फुर्सत नहीं है। दूसरी, बौद्धिक जिज्ञासा। वैचारिक रूप से समझना चाहते हैं। ज्ञान में संजोना चाहते हैं, स्मृति में रखना चाहते हैं। तीसरी, मुमुक्षा, मुक्ति की चाहत। अब सिर्फ समझने, बुद्धि में रखने का सवाल नहीं है, जीवन दांव पर लगा हुआ है। जैसे एक आदमी मरुस्थल में मर रहा है, प्यासा है, पानी चाह रहा है। तो ऐसा नहीं है कि पानी की फिजिक्स और केमिस्ट्री का फार्मूला समझना चाह रहा है। पानी पीना चाह रहा है वरना प्राण निकल जाएंगे। जब ऐसी गहरी प्यास होती है जानने की--तब मुमुक्षा! ऐसा व्यक्ति ही साधक बनता है। साधु का एक और अर्थ है जो सरल है, जो हृदयपूर्ण है। सहज है, जो जटिल नहीं है।

'सुनो' शब्द की एक और गहरे अर्थ को समझना। भगवान महावीर ने कहा है, मैंने चार तीर्थ बनाए हैं। महावीर को तीर्थंकर कहते है ना! तीर्थ यानी घाट, जहाँ से उतर के व्यक्ति उस पार जा सकता है। महावीर के अनुसार पहला और दूसरा घाट, श्रावक और श्राविका का है, सुनने वालों का है। तीसरा और चौथा घाट, साध्वी और साधु का है। साधु को उन्होंने द्वितीयम रखा है, श्रावकों को प्रथम कोटि में रखा है। सुनने वाला श्रेष्ठ है। जब कबीर साहब कहते हैं सुनो भाई साधु तो एक गहरा अर्थ यहाँ पर यह भी है कि हे साधुओ, साधने में ही मत लगे रहना, सुनो भी। बिन बाजा

झनकार उठे जहाँ। भीतर डूबकर सुनना है, ओंकार के श्रावक बनना है। ब्रह्म का नाद गूंज रहा है, सुनो। इसलिए कहाः सुनो भाई साधो। दिखता जरूर है साधारण, लेकिन इसके अंदर बड़ी महिमा छुपी हुई है। काश हम वह सुनने लगें जो श्रवण योग्य है, तो अत्यंत सुगमता से बात बन जाये। आत्मज्ञान हासिल हो जाए।

कबीर साहब अक्सर अपने आप को बौराना या दीवाना संबोधन क्यों करते हैं, जैसे- 'कहै कबीर दीवाना'? संत मीराबाई भी खुद को दीवानी क्यों कहती हैं?

कबीर साहब का पूरा पद इस प्रकार है-

हम तो एक एक करि जाना।
किरिया करम अचार मैं छोड़ा, छोड़ा तीरथ नहाना।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक बौराना॥
ना मैं जानूं सेवा बंदगी ना मैं घंट बजाई।
ना मैं मूरत धरि सिंहासन ना मैं पुहुप चढ़ाई॥
ना हरि रीझै जप तप कीन्हे ना काया के जारे।
ना हरि रीझै धोति छाड़े ना पांचों के मारे॥
दया रखि धरम को पाले, जग सूं रहै उदासी।
अपना सा जिव सबको जाने ताहि मिले अनिवासी॥
सहे कुशब्द बाद को त्यागे, छोड़े गरब गुमाना।
सत्य नाम ताहि को मिलि है कहै कबीर दिवाना॥

ओशो ने अपनी किताब का जो शीर्षक चुना है, वह बड़ा महत्वपूर्ण वचन है। ऐसे समझिए जैसे एक पागलखाने में एक व्यक्ति अचानक स्वस्थ हो जाए। उसे कैसा लगेगा? उसके स्वस्थ होने के बाद अन्य लोग उससे कैसा व्यवहार करेंगे? अभी तक वह उनके साथ मिल-जुलकर रहता था। सब के समान था। अब वह उनसे भिन्न हो गया। ये सब लोग उसको पागल कहेंगे।

ठीक इसी प्रकार जो लोग इस धरती पर जाग जाते हैं, उनकी स्थिति ऐसी हो जाती है, कि सारी दुनिया उनको पागल कहने लगती है। यद्यपि वे ही समझदार हैं। मगर करें तो क्या करे? इन पागलों के बीच में वे करुणावान लोग खुद पर ही व्यंग्य करते हैं, अपने ऊपर ही कटाक्ष कर लेते हैं-

कबीर कहते हैंः कहै कबीर दीवाना। मीरा कहती हैः हे री मैं तो प्रेम दीवानी। सच पूछो तो सारी दुनिया दीवानी है, पागल है। यह मजाक है, हमारे ऊपर व्यंग्य है, कटाक्ष है।

हम तो एक एक करि जाना, कहै कबीर दीवाना॥

हमने उस एक परमात्मा को एक में, अद्वैत में जाना। वहाँ कोई द्वन्द्व नहीं, द्वैत नहीं है। हम साधारण मनुष्य इस दुनिया को जानते हैं दो में, अनेक में। डायलेक्टिकल एग्जिस्टेंस--बड़े विरोधी द्वन्द्वों से बना हुआ है जगत। अनेक ही अनेक हैं, एक का तो कहीं पता ही नहीं चलता।

कबीर साहब जो भी कहेंगे अपने आंतरिक अनुभव को प्रकट करने के लिए, हमको उनकी बात पागलपन जैसी लगेगी। वे कहां की बातें कर रहे हैं? हम दुखियारे लोगों के बीच में कहां शांति और आनंद के खजाने की बात करते हैं? हम शोरगुल में जी रहे हैं। वे कह रहे हैं कि परमात्मा का अंतर-संगीत गूंज रहा है। दिमाग खराब हो गया इनका। इससे

पहले कि हम ऐसा कहें, वे खुद ही अपने आप को दीवाना, मस्ताना कह लेते हैं। सब सयाने हैं। कबीर कहते हैं कि संसार में जो धार्मिक क्रियाकांड व आचरण होते थे, मैंने सब त्याग दिए। दुनिया मुझको बौराना समझती है।

किरिया करम अचार मैं छोड़ा, छोड़ा तीरथ नहाना।

सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक बौराना॥

अज्ञान में जीने वाले लोग आत्मज्ञानी के लिए बुरे शब्द बोलेंगे, अपशब्द, गालियां देंगे, अपमान करेंगे, वह चुपचाप सह लेगा।

सहे कुशब्द बाद को त्यागे, छोड़े गरब गुमाना।

सत्य नाम ताहि को मिलि है कहै कबीर दिवाना॥

वह जो स्वस्थ व्यक्ति पागलखाने में होगा, क्या वह प्रतिक्रिया करेगा जब लोग उसको पागल कहेंगे? वह जानता है कि ये बेचारे पागल हैं, उन पर दया ही आएगी। क्या उनसे वाद-विवाद करेगा? नहीं, हंसेगा। उनकी बातों को गंभीरता से नहीं लेगा। सच पूछो तो असली बुद्धिमान तो वही करुणावान व्यक्ति है, और बुद्धू तो हम हैं।

उसे प्रभु का सत्यनाम मिल गया, शांति-आनंद का साम्राज्य प्राप्त हो गया। हम चिंता-फिक्र, उदासी, क्रोध-लोभ-ईर्ष्या में जी रहे हैं। जरा फिर से सोचो--कौन है दीवाना, और कौन है सयाना?

जीवन की क्षणभंगुरता प्रगट करने वाला यह प्रसिद्ध कबीर-दोहा है- 'माटी कहै कुम्हार सूं'। क्या संतगण नश्वरता की बारंबार याद दिलाकर हम दुखियारों को और ज्यादा दुखी करना चाहते हैं?

जी नहीं। संतगण नश्वर जगत की बारम्बार याद दिलाकर हम दुखियारों को और ज्यादा दुखी करना नहीं चाहते हैं। बिल्कुल नहीं। वे हमें नश्वर से शाश्वत, आनंद-अमृत की खोज पर ले जाना चाहते हैं। संत हमारे दुख को देखकर करुणा से भर जाते हैं। उन्हें दया आती है कि हम शाश्वत चैतन्यमय अमृत के पुत्र हैं। और हम रोते हुए जीवन व्यतीत कर रहे हैं। नश्वर शरीर के तल पर जीवन व्यतीत कर रहे हैं जो कि हाथ से छूट जाने वाला है। हमारे भीतर अमृत का खजाना मौजूद है। और हम उस साम्राज्य को छोड़ कर बाहर बाहर पूरी जिंदगी व्यतीत कर दे रहे हैं। उन चीजों को इकट्ठा कर रहे हैं जो कि नश्वर हैं, क्षणभंगुर हैं और हमारे साथ जाने वाली नहीं है।

माटी कहै कुम्हार सूं तू का रूंधे मोहि।

एक दिन ऐसा आएगा, मैं रूंधूंगी तोहि!

इसलिए कबीर तो शाश्वतता की याद दिलाने के लिए मौत की बात करते हैं कि तुम्हारी बात बड़ी संभावना है। तुम अमृत के पुत्र हो। तुम्हारे भीतर सदाबहार ओंकार गूंज रहा है, सनातन चैतन्य मौजूद है और शाश्वत आकाश खुला हुआ है, तुम उसमें प्रवेश कर जाओ। जन्म-मृत्यु के मध्य इस तथाकथित जीवन के दुख में मत उलझे रहो। यह सब खत्म हो जाएगा। सारा दुख तो क्षणभंगुरता का ही है। सब कुछ फिसल फिसल जा रहा है। चीजें छूट छूट जा रही हैं। अभी नहीं छूट रही हैं तो मरते समय तो छूटेंगी। *जागो। जब इतना दुख और डर है तो इसे जान ही लो। भयभीत व्यक्ति जी कहां रहा है? हर प्रकार के भय अंततः किस चीज के भय हैं? मृत्यु का ही तो भय है। और संत याद दिलाना चाह रहे हैं कि मृत्यु है ही नहीं।*

चेतना के तल पर मृत्यु है ही नहीं। एक ऐसी जगह है जहां तुम पहुँच जाओ, वहाँ मृत्यु होती ही नहीं है। वहाँ जीवन ही जीवन है, महाजीवन है। *ओशो कहते हैंः मैं मृत्यु सिखाता हूं। अगर किसी ने वह कला सीख ली तो वह*

शाश्वत परम जीवन को पा लेता है। दुख से मुक्त होकर परमानंद को जान लेता है। कारागृह के बंधनों से छूटकर मोक्ष को, परम स्वतंत्रता को उपलब्ध कर लेता है।

उपनिषद के ऋषि जब कहते हैंः मृत्योंमा अमृतं गमय, तब वे मौत की स्मृति दिलाकर क्षणभंगुर से मोह समाप्त कर रहे हैं, और तुरंत अमृत की ओर इशारा भी कर रहे हैं। उनका इरादा हमें डराने का, दुखी और भयभीत करने का नहीं है। वे हमें स्वयं के सनातन सत्य की ओर साधना हेतु प्रेरित करना चाहते हैं। *उनके वचन नकारात्मक या निंदात्मक नहीं हैं, जीवन के तथ्य की घोषणा हैं। वचन के पीछे छिपा हुआ संदेश हैः सकारात्मक की, विधायक की तलाश में लगो।*

ओशो की एक हिंदी व्याख्यानमाला का शीर्षक हैः 'सहज मिले अविनासी' कबीर की इस उलटबांसी में किस आध्यात्मिक रहस्य की ओर संकेत है?

कबीर का पूरा वचन इस प्रकार है-

घर में वस्तु धरी नहिं सूझै, बाहर खोजन जासी॥

कहत कबीर सुनो भाई साधो, सहज मिले अविनासी॥

ओशो समझाते हैं कि यह जो मिलन है प्रभु का, सहज हो जाता है। इसके लिए कोई साधना नहीं करनी पड़ती। इसके लिए कोई जप-तप, व्यर्थ की परेशानियां नहीं उठानी पड़तीं। यह सहज हो जाती है बात। सहज का मतलब यह मत समझ लेना कि सरलता से हो जाती है। सहज का अर्थ सरल नहीं होता। सहज का अर्थ स्वाभाविक होता है। सहज का अर्थ होता हैः यह तुम्हारा स्वभाव ही है कि तुम परमात्मा के साथ एक हो सकते हो। जब तक तुमने तय किया नहीं होना है, तब तक रुके हो; जिस दिन तुमने ढील डाल दी, अपने अवरोध हटा दिए, द्वार-दरवाजे खोल दिए--सहज हो जाती है।

जैसे सुबह सूरज बाहर निकला है और तुम दरवाजे बंद किए भीतर बैठे हो और आंखें बंद किए हो--अंधेरी रात है तुम्हारे लिए, अमावस है। सूरज बाहर निकला है। मामला बिल्कुल सहज है। तुम दरवाजा खोल दो, सूरज भीतर आ जाए। तुम आंख खोल दो, सूरज के दर्शन हो जाएं। सरल नहीं है इसका अर्थ। क्योंकि अगर आंख बंद करने में तुम्हारा कुछ न्यस्त स्वार्थ है, तो आंख खोलना आसान नहीं होगा। या अगर तुम आंखें जन्मों-जन्मों से बंद किए हो तो आज एकदम से आंख खोलना आसान नहीं होगा। और दरवाजे अगर तुमने कभी खोले ही नहीं हैं तो शायद वे अब तक दीवाल हो चुके होंगे; शायद उनको खोलना इतना आसान न हो।

समझना सहज का अर्थ सरल नहीं होता; सस्ता नहीं होता। सहज का अर्थ होता हैः स्वाभाविक है यह। ईश्वर से दूर होना अस्वाभाविक है। ईश्वर के पास होना स्वाभाविक है, क्योंकि ईश्वर हमारे प्राणों का प्राण है।

मीरा भी यही कहती है--

पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे।

मैं तो मेरे नारायण की आपहि हो गई दासी रे।

लोग कहैं मीरा भई बावरी, सास कहैं कुलनासी रे।

विष का प्याला राणाजी भेज्यां, पीवत मीरा हांसी रे।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अविनासी रे।

अन्य भक्त भी कहते हैंः परमात्मा को पा लेना सहज है। परमात्मा खुद आता है। तुम पुकारो भर! तुम्हारी पुकार पूर्ण हो! तुम प्यासे भर होओ! तुम्हारी प्यास भर समग्र हो। परमात्मा स्वभाव है; इसलिए सहज है। न तो सस्ता

है, न महंगा; अमोलक है। न तो कुछ करने से मिलता है, न बैठे-ठाले मिलता है। कुछ तीसरी बात चाहिए। हृदय की गहन प्यास चाहिए। कृत्य का सवाल नहीं है और बैठे-ठाले भी नहीं मिलता है। बैठे-ठाले का अर्थ हैः प्यास भी नहीं। और कृत्य का अर्थ हैः बड़ा अहंकार है और बड़ा संकल्प है। भक्त कहता हैः परमात्मा तुम्हें खोज रहा है। तुम्हीं उसे खोज रहे हो, ऐसा नहीं है। इसलिए सहज है। अकेला आदमी खोजता तो पाता भी कैसे! कहीं भटक जाता लेकिन उसका हाथ भी तुम्हारी तरफ बढ़ा हुआ है। वह तुम्हें तलाश रहा है।

और उसी क्षण मिलन हो जाएगा, जिस क्षण तुम्हारी प्यास तुम्हारे पूरे प्राणों को सुलगा देगी। एक भभक! एक लपट!--कि रोआं-रोआं उसमें सम्मिलित हो जाएगा। कण-कण उसमें समाहित हो जाएगा। तुम प्यास से अलग न बचोगे--तुम प्यास ही हो जाओगे। ऐसी प्रार्थना, ऐसी प्यास, ऐसी पुकार--बस इतना पर्याप्त है। रोओ उसके लिए--वही प्रार्थना है। पुकारो उसके लिए--वही साधना है।

कबीर साहब के इस वचन का भावार्थ क्या है जिस पर ओशो ने अपनी पुस्तक का शीर्षक चुना हैः 'गहरे पानी पैठ'?

संत कबीर का पूरा दोहा इस प्रकार हैः

जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ

मैं बौरी खोजन गई, रही किनारे बैठ।

अन्यत्र कहा हैः

मैं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ।

ओशो ने तीर्थ, मंदिर, तिलक-टीके, मूर्ति-पूजा आदि गूढ़ विषयों के रहस्य उजागर किए हैं। तन-मन हमारे होने की सतह है। वहां केवल क्षणभंगुर लहरें हैं। चेतना के सागर की गहराई में शाश्वत सत्य के मोती हैं।

सागर की गहराई में जाने से ही मोती, जवाहरात, कोरल्स मिलते हैं। बहुत सुन्दर-सुन्दर चीजें अगर चाहिए तो गहराई में जाना पड़ेगा। तट पर बैठे हो तो क्या मिलेगा? कुछ भी नहीं मिलेगा, बस यूं ही लहरों के थपेड़े शोरगुल मचाते रहेंगे, पानी के बुलबुले और झाग लाते रहेंगे।

अध्यात्मिक जगत में जिन्होंने सत्य पाया है, प्रभु को पाया है, उन्हें अपनी गहराई में जाना पड़ा है। सतह क्या है और गहराई क्या है, यह समझ लो। सतह है हमारा तन और मन। गहराई है चेतन। हम किनारे पर बैठे रहते सारी जिंदगी, तन और मन में ही उलझे रह जाते हैं। चेतना की गहराई तक जाना है। गहराई में कैसे जाएंगे? कबीर साहब ने बहुत सुन्दर उपाय बताया हैः सुन्न महल में दियना बार ले आसन से मत डोल।

अपने भीतर गहराई में प्रवेश करने की कला है कुछ समय के लिए व्यस्तता खत्म करके, अधिक से अधिक सजग होते जाना। अंतराकाश को देखते देखते भीतर डुबकी लगाना। ओंकर सुनते सुनते लवलीन हो जाना। तब अपने अंतरतम की गहराई में आत्मा का पता चलेगा।

लेकिन हमारी हालत मुल्ला नसीरुद्दीन जैसी है। नसीरुद्दीन को तैरना सीखना था। उस्ताद के साथ नदी किनारे गया। सीढ़ी पर काई जमी थी। उसने जैसे ही एक पैर रखा, फिसल गया। तुरंत घबरा कर बाहर निकला और उल्टे पैर भागने लगा। उस्ताद ने पूछाः भाई तुम कहाँ जा रहे हो? तैरना सीखना है। मुल्ला बोलाः मुझे बुद्धु मत बनाओ। मैं कसम खाता हूँ, कान पकड़ता हूँ, जब तक तैरना सीख नहीं लूँगा, दोबारा नहीं आऊंगा, मेरी तो आज जान ही चली जाती।

ऐसी हमारी हालत है। कबीर कहते हैंः मैं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ। हम भी डरे हुए लोग हैं। घर में बिस्तर पर तैरना सीखने का प्रयास करते हैं। हम समझते हैं कि हम सतह पर बैठे बैठे तैरना सीख जाएं। ऐसा संभव नहीं। तट पर बैठे बैठे कुछ नहीं होगा, गहराई में जाना होगा। किनारे बैठे हैं अधिकांश लोग कौतुहल में, अभी जिज्ञासा तक भी नहीं जन्मी है। कब आएगी वह घड़ी--अथातो भक्ति जिज्ञासा--कब हम मोक्ष की मुमुक्षा से भरेंगे? कब हम अपनी गहराई में जाएंगे जहां प्रभु मिलेगा।

'गहरे पानी पैठ' अब इस वृहत संकलन में प्रकाशित हुई है-मैं कहता आंखन देखी।

कबीर साहब के इस वचन का भावार्थ क्या है जिस पर ओशो ने अपनी पुस्तक का शीर्षक चुना हैः 'जिन खोजा तिन पाइयां'?

पूरा दोहा इस प्रकार हैः

जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ

मैं बौरी खोजन गई, रही किनारे बैठ।

जिन खोजा तिन पाइयां, इस वचन के दो अर्थ किए जा सकते हैं। पहला अर्थ हैः जो खोजते हैं, केवल वही पाते हैं। जो मार्ग पर चलते हैं वही मंजिल पर पहुंचते हैं। जो श्रम और साधना करते हैं वही साध्य को उपलब्ध होते हैं। जो रास्ते पर चलेगा ही नहीं वह मंदिर तक कैसे पहुंचेगा?

कबीर साहब के इस वचन का दूसरा अर्थ हैः जो हम खोजते हैं वही हम पाते हैं। इस अस्तित्व में सब कुछ मौजूद है लेकिन हमें वही उपलब्ध होता है, हम जिसकी तलाश करते हैं। जौहरी की आंख चाहिए तो ही हीरा मिलेगा, वरना हीरा रास्ते पर पड़ा होगा, हम पहचानेंगे ही नहीं और आगे निकल जाएंगे। प्रेमी का हृदय हो तो प्रेयसी मिलेगी अन्यथा नहीं मिल सकती। अन्वेषण वाली बुद्धि हो तो अनेक प्रकार के नए-नए आइडिया सूझेंगे और एक के बाद एक नूतन आविष्कार होते चले जाएंगे।

परमात्मा की खोज जो करेगा उसे परमात्मा मिलेगा। धन या पद की खोज जो करेगा उसे संपत्ति और शक्ति प्राप्त हो सकती है। शांति के खोजी को शांति मिलेगी। काव्यात्मक हृदय वाले को वह नजर आता है जिस पर कविता उतर सके। उसकी विशेष नजर, खास नजरिया, दृष्टिकोण है। उसी स्थान पर मौजूद दूसरे आदमी को कुछ भी विशिष्ट दिखाई नहीं पड़ेगा। संगीतकार के पास श्रवण की खास क्षमता है। वह उन सूक्ष्म सुरों को पकड़ लेता है जो अन्य किसी को सुनाई भी नहीं पड़ते।

खोज के अनेक आयाम हैं- सबसे पहली, उथली और सतही खोज है कुतूहल, क्यूरियोसिटी। केवल जानने का ख्याल है कुछ विशेष नहीं। कोई मेहनत करने का सवाल नहीं है, कुछ दांव पर लगाने की हिम्मत नहीं है। यूं ही जानकारी मिल गई तो ठीक वरना कोई बात नहीं। खोज का दूसरा तल है, जिज्ञासा। सूचना प्राप्त करने की इच्छा, जानकारी हासिल करनी है। अपनी बौद्धिक संपदा बढ़ानी है, ज्ञानी विद्वान बनना है।

खोज का तीसरा ढंग है, साधना में डूबने के लिए शिष्यत्व की तैयारी। सिर्फ जानना ही नहीं है स्वयं को बदलना है। रूपांतरण की कोशिश में संलग्न होना है। चौथा आयाम है, मुमुक्षा। अब सिर्फ रूपांतरित ही नहीं होना बल्कि वही हो जाना है जिसे जाना है। परमात्मा को दूर-दूर से नहीं जानना बल्कि स्वयं परमात्मा होकर ही जानना है। जैसे कोई नदी सागर में गिरने तैयार हो जाए और सागर ही हो जाए।

कबीर साहब कहते हैं जो डर गए वे किनारे आकर भी चूक जाते हैं। यदि नदी भयभीत हो जाए कि समुद्र में गिर के समुद्र हो जाऊंगी, लेकिन फिर मैं स्वयं तो बचूंगी ही नहीं! गंगा फिर गंगा नहीं रह जाएगी, यमुना यमुना नहीं रह

जाएगी। कबीर साहब हमें इशारा कर रहे हैं कि कुतूहल और जिज्ञासा से आगे बढ़ो, किनारा छोड़ो, डूबने की तैयारी करो। प्रभु को नहीं जानना है, प्रभु ही हो जाना है--अहं ब्रह्मास्मि का उद्घोष हो।

कबीर साहब के एक वचन पर ओशो ने अंग्रेजी में अंग्रेजी व्याख्यानमाला दी है: 'द फिश इन द सी इज नॉट थर्स्टी' कबीर की इस उलटबांसी में कौन सा आध्यात्मिक राज छिपा है?

कबीर का पूरा वचन इस प्रकार है-

पानी बिच मीन पियासी, मोहि सुनि सुनि आवत हाँसी।

ऐसे समझो कि कोई पंछी आकाश में उड़ रहा है और वह कहेः क्या है आकाश? कहां है आकाश? मुझे आकाश के दर्शन करा दो। या ऐसे समझो कि कोई वृक्ष है और वह कहेः जमीन कहां है? वायुमंडल कहाँ है? अरे उसी में है वह वृक्ष और उसी के कारण जिंदा है। अथवा ऐसे समझो कि सागर में मछली कहेः मैं बहुत प्यासी हूं, सागर कहां है? पानी किसे कहते हैं?

ऐसे ही साधक पर व्यंग्य कर रहे हैं कबीर साहब। कई बार ऐसा होता है कि चश्मा आँखों पर चढ़ा हुआ है और आदमी चश्मा को दुनिया भर में ढूंढ रहा है। एक बार हुआ हम रजनीशपुरम में रहते थे तब की घटना बताउं। एक नए-नए आए संन्यासी को बहुत सोने की आदत थी। किसी को उनकी इस आदत का पता नहीं थ। जब वह एक दिन न किचन में भोजन हेतु आए, न आफिस में कार्य पर पहुंचे। तब लोगों ने सोचा कि वह व्यक्ति कहां गया है? ढूंढ़ते-ढूंढ़ते सब लोग परेशान हो गए। पुलिस द्वारा हेलिकॉप्टर से आसपास की पहाड़ियों पर और नदी किनारे दूर-दूर तक खोजबीन की गई। किसी ने देखा ही नहीं उनके कमरे में जाकर और 64000 एकड़ की भूमि पर हेलिकॉप्टर घूमता रहा। जगह-जगह कैमरा लगे थे, किंतु कोई प्रमाण न मिला कि वह व्यक्ति कहाँ चला गया? तीन दिन बाद जब वह किचन में आया तो किसी ने आश्चर्य से भरकर पूछाः तुम कहां गए थे?

उन सज्जन को सज्जन को पता ही नहीं था की 3 दिन बीत गए हैं। लोगों ने उसके कमरे में देखा ही नहीं था। क्योंकि दूर दूर नजर जाती है, पास में, घर में नहीं दिखाई देता। कबीर साहब ठीक कहते हैं कि घर में वस्तु धरी नहीं सूझे बाहर खोजन जाती। पानी रूपी परमात्मा में मनुष्य रूपी मछली जन्मी है और रह रही है। हम एक पल भी जिंदा नहीं रह सकते। उसके बिना रह सकते हैं क्या?

हम सोचते हैं हमारे कारण यह देह और इंद्रियां काम कर रही हैं। नहीं कर सकतीं, भीतर का चेतना निकल जाए, यह शरीर पड़ा रह जाएगा। क्षण भर में सब मिट्टी हो जाएगा। ओंकार से ओतप्रोत चैतन्य सागर में हम जीवित हैं। और हम तड़प रहे विरह में कि कहां है प्रभु? परमात्मा के दर्शन करा दो। कबीर साहब को दया आती है। उनके कहने का ढंग व्यंगात्मक, मजाक है।

पानी बिच मीन पियासी, मोहि सुनि सुनि आवत हाँसी॥

घर में वस्तु धरी नहिं सूझै, बाहर खोजन जासी॥

कबीर साहब कहते हैं- 'सहज समाधि भली'। क्या असहज और बुरी समाधि भी होती है?

कबीर साहब का पूरा वचन इस प्रकार है--

साधो सहज समाधि भली।

जहं-जहं डोलौं सो परिकरमा जो कछु करौं सो सेवा।

जब सोवौं तब करौं दंडवत, पूजौं और न देवा॥

सहज समाधि भली से विपरीत होती है जड़ समाधि बुरी। मादक द्रव्य, गांजा भांग अफीम, आत्मविस्मरण, मंत्रजाप आदि से पैदा हुई तंद्रा जैसी स्थिति को बहुत लोग समाधि समझते रहे हैं।

जब कबीर साहब कहते हैं साधो, तो जो साधना कर रहे हैं, उनसे बात करते हैं। साधुओं को कह रहे है कि साधुओ, सहज समाधि भली है। समाधि की साधना कब तक करनी है? जब तक वह सहज समाधि ना हो जाए। साधो सहज समाधि भली।

ऐसे समझो कि जैसे कोई व्यक्ति साइकल चलाना सीखता है। तो शुरू में उसको बहुत प्रयास करने पड़ते हैं। बहुत बैलेंस साधने की, संतुलन बनाने की कोशिश करता है। फिर भी लड़खड़ाता है, गिरता है। जिस तरफ नहीं जाना, साइकल वहीं चली जाती है। टक्कर भी होती है, कई बार चोट भी खाता है। बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। फिर एक वक्त आता है कि साइकल चलाना आ जाता है। अब उसको कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। संतुलन उसका सध गया है। अब उसको स्पेशल कोई एफर्ट नहीं करना पड़ रहा। कोई विशेष ध्यान नहीं देना पड़ रहा। संतुलन साधने में वह सिद्ध हो गया।

बहुत पहले हम लोग जहाँ पर रहते थे, वहाँ एक गांव हुआ करता था। हम दोनों को शौक था कि हम अंधेरे में घूमने जाया करते थे। वहाँ जंगल सा था, खेत भी थे। और मैं देखती थी कि साइकिल चलाने वाले लोग, फैक्टरी से छुट्टी होने पर वहाँ से निकलते और वे सब खेत की मेड़ पर से साइकल चलाकर अंधेरे में मजे से गुजरते। सामान्य जन ऊबड़-खाबड़ जगहां पर उजाले में भी साइकल नहीं चला सकते। लेकिन नियमित रूप से गुजरने वाले उन लोगों के लिए साइकल इतनी सिद्ध हो गई थी।

ऐसी सिद्धि आ जाती है समाधि में भी। हमें करना नहीं पड़ती है। प्रभु-स्मरण करना नहीं पड़ रहा, सुरति साधनी नहीं पड़ रही है। किसी शायर ने लिखा है--

वो उन्हें याद करें, जिसने भुलाया हो कभी
हमने उनको न भुलाया, ना कभी याद किया।

विस्मरण होता ही नहीं है अब। ऐसी समाधि हो जाए तो साधु सिद्ध हो गया।

जहं-जहं डोलौं सो परिकरमा जो कछु करौं सो सेवा।

सहज समाधि कैसे आ गई? जहाँ जहाँ डोलता हूँ चलता-फिरता हूँ वही मेरी परिक्रमा हो जाती है। घर-परिवार का पालन-पोषण ही सेवा हो गई है। जिंदगी के समस्त कर्म प्रभु चरणों में अर्पित हैं।

भगवान की अगर हम परिक्रमा कर लिए तो भगवान हम से छोटा होगा ना? उस विराट की कैसे परिक्रमा करेंगे? कर सकते नहीं। परिक्रमा एक भाव है, सारी धरती तीर्थ है, परिक्रमा के भाव में उठना-बैठना है। जहाँ जहाँ चल रहे हैं वहीं प्रभु की परिक्रमा हो रही है। उसकी याद में जी रहे हैं, भाव जब इतना प्रगाढ़ हो जाए फिर कुछ करना नहीं पड़ेगा। कोई विधि विधान नहीं करनी पड़ेगी। फिर यह भाव और यह अनुभूति होती रहेंगी।

हम जो भी करते हैं अब वह सेवा ही है। कबीर दुकान चलाते हैं, अब दुकान भी मंदिर है। अक्सर तो लोग मंदिर में दुकान ले आते है। कबीर साहब मंदिर को दुकान में ले आए। संन्यास को दुकान में ले आए। ओशो जिसे झोरबा दि बुद्धा कहते हैं, कबीर साहब खुद उसके उदाहरण हैं। आजीवन कपड़ा बुनते रहे बेचते रहे। अनेक लोगों ने, शिष्यों ने कहा आप सिद्ध हो गए हैं, अच्छा नहीं लगता, अब आप क्यों यह कपड़ा बुनते हैं?

उन्होंने कहा मेरे जैसा कपड़ा कौन बुनेगा मेरे राम के लिए। आने वाला हर एक ग्राहक उनके लिए राम था। लोग तो उल्टा करते हैं, मंदिर में दुकान खोले लेते हैं। राम के नाम पर भी व्यवसाय करने लगते हैं। लेकिन कबीर ठीक

विपरीत कर रहे हैं। दुकान को मंदिर में मत लाओ। मंदिर बन जाए तुम्हारी दुकान। मंदिर बन जाए तुम्हारा घर। और उन्होंने इसका ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया।

जब सोवौं तब करौं दंडवत, पूजौं और न देवा॥

पूजा-पाठ की जरूरत नहीं है। अब कहीं दंडवत करने की जरूरत नहीं है। सोता हूं तो इसे भाव से सोता हूँ कि उसे दंडवत नमन कर रहा हूँ। क्या हम भी ऐसा ही जीना आरंभ कर सकते हैं? हमने बांट रखा है कि संसार अलग है और धर्म अलग है। बाजार अलग, प्रार्थना अलग। धन अलग, ध्यान अलग। एक घंटा ध्यान करेंगे, बाकी समय 23 घंटे धन कमाएंगे तो कैसे बनेगी बात?

ध्यान को संसार में ले आओ। संपूर्ण जीवन में सजगता और प्रेम की सुगंध को फैला लो--सब कुछ डिवाइड लाइफ है। खंडित हो गए हैं हम, इस खंड-खंड को खत्म करो। अखंड हो जाओ तो सहज समाधि फलित हो जाएगी। एक ही राज है अखंड, अविभाजित, संयुक्त, संपूर्ण, समग्र हो जाओ। सहज समाधि फलित हो जाएगी। खंड-खंड में जीने वाला भीतर कुछ, बाहर कुछ और हो जाता है, पाखंड में गिर जाता है।

ओशो को कबीर की यह पंक्ति इतनी पसंद है कि उन्होंने अपनी एक किताब का शीर्षक चुना--सहज समाधि भली।

कबीर साहब के इस वचन का क्या तात्पर्य है- 'मेरा मुझमें कुछ नहीं'?

संत कबीर का पूरा वचन इस प्रकार है--

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर।

तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर॥

बीर साहब जब कहते हैं कि मेरा मुझमें कुछ नहीं तो वैसा महसूस करें हम, खुद ही आंख बंद करके। अपने आप में सोचो कि आपका अपना क्या है? मेरा क्या है? यह जो जन्म मिला, क्या हमसे पूछकर मिला था? और मृत्यु आएगी, तो क्या हमसे पूछकर आएगी? जब जन्म और मृत्यु हमसे पूछकर नहीं घटते तो इन दोनों के मध्य में जो समय है जीवन का, यह हमारा कैसे हो सकता है?

बंद आँखों से अपने भीतर देखें, सांस चल रही है। क्या हमारे वश में है एक भी सांस लेना? दिल धड़क रहा है, क्या हम धड़का सकते हैं? हमारे कारण धड़क रहा है! भीतर जो भी हो रहा है, इतनी सारी प्रक्रियाएं चल रही हैं, जिसके कारण हम जिंदा हैं। क्या हम यह कर सकते हैं? हमारे वश में क्या है? कुछ भी तो नहीं है।

अब आंख खोलकर बाहर देखो। अगर हमारी दुनिया अच्छी है, संसार अच्छा है, फैलाव अच्छा है, दुकानदारी अच्छी है, यश, पद, धन-दौलत सब है, तो इसमें हमारा क्या है? बुद्धि के कारण सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा है! तो बुद्धि किसकी है? बुद्धि भी परमात्मा ने दी है ना? अज्ञात रहस्यमय अस्तित्व से मिली है। अतः बुद्धि भी हमारी नहीं है। फिर जो बुद्धि द्वारा बनाया गया है, वह कैसे हमारा हो सकता है?

अनेक लोग सोचते हैं कि अहंकार से मुक्ति कैसे मिले? जिंदगी भर साधना करते हैं, अहं-मुक्त हो जाएं। और मेरेपन के भाव को फैलाते रहते हैं। मोह को विस्तार देते रहते हैं। अगर अभिमान से मुक्त होना है, तो 'मेरे' के प्रति जागो। मेरे के फैलाव को देखो, उसे पकड़ो। देखो, जितना बड़ा मेरा, उतना बड़ा मेरा अहंकार--'मैं'। मान लो मेरे पास एक छोटा झोंपड़ा है। उतना छोटा मेरा मैं हो गया। यदि घर बिल्कुल महल जैसा हो जाए तो मैं भी महान हो जाएगा। अगर कई महल हैं तुम्हारे तो और भयंकर घमंड हो गया। सारे लोग तुम्हारे वश में हैं, तो और बड़ा मैं हो गया।

जितना 'मेरा का घेरा' बढ़ता जाता है, उसके साथ उतना ही मैं-भाव फैलता जाता है। इसलिए मेरे के प्रति जागना है। गौर से देखो तो पाओगे कि वास्तव में मेरा तो कुछ भी नहीं है। सब उसी का दिया हुआ है। जो कुछ अच्छा है, अथवा बुरा है, वह सब उसका ही दिया हुआ है। मेरा क्या है? जितने गुण हैं अथवा दुर्गुण हैं, शुभ-अशुभ सब उसके हैं।

हे प्रभु, मैं तेरे को क्या समर्पण करूँ? प्रभु मेरा है क्या? मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर। तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर॥

ओशो को कबीर की यह पंक्ति इतनी पसंद है कि उन्होंने अपनी एक किताब का शीर्षक चुना--'मेरा मुझमें कुछ नहीं'।

कबीर साहब पर ओशो की एक अंग्रेजी प्रवचनमाला का शीर्षक है- 'द पाथ ऑफ लव'। निवेदन है कि इसका भावार्थ समझाएं?

उपरोक्त शीर्षक कबीर के इस भजन पर आधारित है-

भक्ति का मारग झीना रे।

नहिं अचाह नहिं चाहना, चरनन लौ लीना रे।

झीना अर्थात् बिल्कुल महीन, सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म है भक्ति की राह। ना तो किसी चीज़ के प्रति, संसार के प्रति चाहत है, ना लगाव है और ना ही अलगाव है। ना राग है ना वैराग है। भोग नहीं, त्याग भी नहीं। नहिं अचाह नहिं चाहना, चरनन लौ लीना रे। भक्ति का मार्ग झीना रे।

से समझ लो जैसे कि एक आदमी भिखारी है। उसके पास कुछ नहीं है। उसे बहुत कुछ चाहिए, बड़ी वासना है। किंतु उसके पास अहंकार नहीं, बिल्कुल घमंड नहीं।

दूसरा आदमी एक राजा है जिसके पास सब कुछ है। इतना अतिरिक्त है कि अब उसे कुछ नहीं चाहिए, कामना नहीं है लेकिन उसके पास अहंकार प्रचंड है।

कबीर साहब के अनुसार भक्त को कैसा होना चाहिए? राजा जैसा निष्काम और भिखारी जैसा निरहंकारी। तभी वह प्रार्थना में तल्लीन हो सकता है।

एक बार की घटना है, एक सूफी फकीर के गुरु की मृत्यु हो गई। एक व्यक्ति बहुत दुखी था। एक रात उसे सपना आता है कि उसकी भी मृत्यु हो गई और वह पहुँच गया है स्वर्ग। वह खोजता है अपने गुरु को। वे एक पेड़ के नीचे मस्ती में डोल रहे हैं। आँखें बंद किए प्रार्थना में डूबे हैं। शिष्य खड़ा देखता रहा। गुरु की प्रार्थना में बाधा पहुंचाना उचित नहीं, चुप रहा।

एक देवदूत गुजरता है वहाँ से। सूफी शिष्य पूछता है कि मेरे गुरु यहाँ पर प्रार्थना कर रहे हैं। हमने तो सुना था स्वर्ग में सब कुछ मिल जाता है। अब प्रार्थना की क्या जरूरत है?

देवदूत ने बतायाः तुमने गलत सुना था। प्रार्थना में स्वर्ग है, स्वर्ग में प्रार्थना नहीं। प्रार्थना में स्वर्ग है। और जब तक ये प्रार्थना में हैं तब तक स्वर्ग में रहेंगे।

ऐसी ही जब भीतर तिरोहित हो जाती हैं समस्त चाहें, कामनाएं, तब भी प्रार्थनाएँ जारी रहती हैं। उनमें वासना नहीं, मांग नहीं, बल्कि जो मिला है उसके प्रति ग्रेटिट्यूड है, अहोभाव है, मस्ती है। भक्ति का मार्ग झीना है। निरंतर एक प्रार्थना, एक स्मरण चल रहा है प्रभु का और चाहिए कुछ भी नहीं। चरनन लौ लीना रे। परमात्मा के श्री चरणों में झुके हैं धन्यवाद के भाव में।

कबीर की भक्ति अनूठी है, बिना मांग वाली प्रार्थना है। अनुग्रह की भावना है। यही सच्ची भक्ति है। इसी का महत्व दर्शाते हुए ओशो ने अपनी पुस्तक का नामकरण किया--'द पाथ ऑफ लव'।

निश्चित ही ओशो द्वारा ऐसा करने से जाहिर होता है कि उन्हें कबीर साहब से कितना अगाध प्रेम है! ओशो ने किताबों के जो शीर्षक चुने हैं, बड़े काव्यात्मक और प्रेरक हैं। जैसे रसायन शास्त्र के छोटे-छोटे फामूर्ले के अंदर बहुत बड़ी घटनाओं के राज छिपे होते हैं, वैसे ही ओशो-साहित्य के शीर्षक, अध्यात्म के रहस्य को बड़े संक्षेप में उजागर करते हैं। आज कबीर पूर्णिमा के उपलक्ष में हम इन धर्म-सूत्रों का, स्प्रिचुअल फार्मूलों का राज समझेंगे।

कबीर साहब जब कहते हैं 'घूंघट के पट खोल' तो उनका किस तरफ इशारा है? क्या परमात्मा घूंघट में छिपा है?

कबीर साहब ने बड़े प्यारे अंदाज में गाया है--

घूंघट का पट खोल रे, तो को पीव मिलेंगे।

सुन्न महल में दियना बारिले, आसन सों मत डोल रे॥

पहली बात, परमात्मा घूंघट में नहीं छिपा है, परमात्मा पर पर्दा नहीं है। घूंघट हमारी आँखों पर है, पर्दा हमारी आँखों पर है। भीतर देखने वाली हमारी तीसरी आंख पर पर्दा है। यह घूंघट क्या है? व्यस्तता का पर्दा है। वी आर ऑलवेज ऑक्यूपाइड। और व्यस्तता कितने तलों पर है? हमारी बॉडी लेवल पर शारीरिक क्रियाएं चल रही हैं। फिर मन के तल पर विचार हमेशा ही चल रहे हैं। हमेशा विचारों का एक तूफान सा गुजर रहा है। फिर हृदय तल पर भावनाओं का शोर चल रहा है, भावनाएँ भी आ-जा रही हैं लगातार। फिजिकल, मेंटल, इमोशनल--इन तीनों तलों पर निरंतर व्यस्तता है। यही व्यस्तता हमारी घूंघट बन गई है।

यह व्यस्तताएं कैसे कम हो जाएं। कुछ वक्त के लिए अनऑक्यूपाइड होना सीख जाएं। कुछ भी न करें--न तन से, न मन से, न हृदय से। बिल्कुल खाली, शून्य। कबीर साहब उस खालीपन में, सुन्न महल में दीप जलाने की कह रहे हैं।

शून्य महल क्या है? अपने भीतर जब हम आंखें बंद करते हैं तो एक स्पेस दिखाई देती है। पहले-पहले काले परदे जैसी, टू डाइमेंशनल, किंतु इसको हम जब लगातार देखते हैं तो गहराई उभर आती है, यह थ्री डाइमेंशनल अंतर-आकाश में बदल जाती है। *कबीर साहब इसे ही शून्य का महल कह रहे हैं।* भक्त की भाषा में सुन्न महल में जागरूकता का दीपक जला लो। अर्थात ज्ञानी की भाषा में ध्यानपूर्ण हो जाओ। ताकि प्रमाद का अंधकार मिटे।

फिर आसन से मत डोल। शरीर अडोल हो जाए तो शरीर की व्यस्तता खत्म हो जाएगी। शरीर स्थिर हो गया, उसके बाद मन भी अडोल हो जाए। चित्त कैसे निश्चल हो जाए? वह अनाहत नाद सुनते-सुनते अडोल होने लगता है। श्रवण के साथ गहन चुप्पी, आंतरिक मौन घटित हो जाता है। उस एकांत और निर्विचार सन्नाटे में प्रतीम से मिलन होता है--तो को पीव मिलेंगे।

ओशो को कबीर की यह पंक्ति इतनी पसंद है कि उन्होंने अपनी *दो किताबों का शीर्षक* चुना--'घूंघट के पट खोल'।

भगवान श्री रजनीश ने संत शिरोमणि कबीर के वचनों को अपनी 30 किताबों का शीर्षक चुना। उन्होंने कबीर साहब पर हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रवचन दिए। कृष्ण, पतंजलि, ईसा मसीह, बुद्ध और महावीर के समान ज्योतिर्मय पुरुष के रूप में उन्हें समस्त विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया। कुछ प्रवचनमालाएं ऐसी भी हैं जिनमें कबीर साहब पर व्याख्यान नहीं हैं किंतु उनका शीर्षक कबीर-वचनों पर आधारित है।

निश्चित ही ओशो द्वारा ऐसा करने से जाहिर होता है कि उन्हें कबीर साहब से कितना अगाध प्रेम है! ओशो ने किताबों के जो शीर्षक चुने हैं, बड़े काव्यात्मक और प्रेरक हैं। जैसे रसायन शास्त्र के छोटे-छोटे फामूर्ले के अंदर बहुत बड़ी घटनाओं के राज छिपे होते हैं, वैसे ही ओशो-साहित्य के शीर्षक, अध्यात्म के रहस्य को बड़े संक्षेप में उजागर करते हैं।

कबीर साहब की पंक्ति पर आधारित ओशो की अंग्रेजी किताब है- 'द डिवाइन मेलोडी' यानी दिव्य संगीत। इसका भावार्थ क्या है?

संत कबीर का वचन इस प्रकार है--

जागू जुगुत सों रंगमहल में, पिय पायो अनमोल रे।

कहै कबीर आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे॥

'द डिवाइन मेलोडी' अर्थात् अनहद की धुन जो भीतर अपने-आप बज रही है। किंतु हमारे मन में विचारों का इतना शोर मचा हुआ है, इतना हंगामा है, तो भीतर विराजमान परमात्मा की डिवाइन मेलोडी, दिव्य ध्वनि कैसे सुनाई देगी?

जागू जुगुत सों रंगमहल में--कैसे करना है जाग? शून्य महल में अर्थात् भीतर के आकाश में जब हम जागरूक हो जाते हैं तो वह रंगमहल बन जाता है। यह सजगता, यह आत्म-बोध, यह होश जो है, वह रंगमहल को आनंद से भरपूर कर देता है।

पिय पायो अनमोल रे--उस अनमोल पिया की आवाज बहुत सूक्ष्म है। अति बारीक संगीत है और हमारे चित्त का कोलाहल बहुत ऊंचा है। तो साधक के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण सवाल है कि यह शोर कैसे कम हो जाए? तब पता चलेगा उस शांति में एक अभूतपूर्व सन्नाटा भीतर गूंज रहा, प्रभु अंदर बुला ही रहा है। उसका गीत निरंतर चल रहा है। कहै कबीर आनंद भयो है, वहां आनंद ही आनंद है। वहाँ संगीत ही संगीत है। नूर ही नूर बरस रहा है, रंग ही रंग। अदभुत मिलन है--प्रिया और प्रीतम दोनों भीतर एकाकार हो गए हैं।

कहै कबीर आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे॥

भीतर जागते ही पता चलता है कि अनाहत नाद के ढोल बज रहे हैं। वहाँ पर निरंतर उत्सव है, आनंद है। क्यों? क्योंकि मिलन हो रहा है। परम योग घट रहा है। प्रभु-मिलन का परमानंद। भक्त और भगवान की दुई मिट गई। श्रोता और संगीत अलग-अलग न रहे। दृश्य और द्रष्टा एक हो गए। एक ओंकार समनाम।

कबीर साहब का एक वचन बड़ा प्रसिद्ध है- 'होनी होय सो होय' यानी जो होना है वही होगा। तो क्या मनुष्य कुछ भी न करे? सब परमात्मा पर ही छोड़ दे?

कबीर साहब का पूरा वचन है--

मंगन से क्या मांगिए, बिन मांगे जो देय।

कहैं कबीर मैं हौं वाही को, होनी होय सो होय।

उसकी मर्जी से सब हो रहा है। मांगने का तो कोई सवाल नहीं उठता। कबीर साहब ऐसे अद्भुत भक्त हैं। चाहत जरा भी नहीं है, लेकिन विनम्रता पूरी है। यह जो होना है, हो रहा है, उससे पूर्णतः राजी हैं।

तुमने पूछा--क्या हम सब परमात्मा पर छोड़ दें?

अगर तुमने छोड़ा तो यह भी तुम्हारा करना हो गया। यह एक नेगेटिव प्रकार का करना होगा कि अब मैं कुछ नहीं करूँगा। सब छोड़ दिया, यह भी करना हुआ। इसमें भी कर्ता-भाव है। अगर हम ईश्वर के प्रति समर्पण करते हैं, यह समर्पण भी सच्चा समर्पण नहीं हुआ क्योंकि हमने किया है। हम कल को चाहें तो वापस ले लेंगे। अब समर्पण नहीं करना है। हम वापस लेते हैं। आप ठीक से संभाल नहीं रहे हैं, हम खुद ही संभाल लेंगे।

नहीं, यह समर्पण नहीं हुआ। कबीर कह रहे हैं कि अगर बात समझ में आ गयी, फिर ना तो कोई यह कहेगा कि मैं करने वाला हूँ, ना यह कहेगा कि अच्छा मैं छोड़ता हूँ, लो सब प्रभु मर्जी पर छोड़ता हूँ। नहीं, बात ही खत्म हो गयी। पूर्ण स्वीकार हो गया।

इसको ऐसे समझें एक छोटा सा घास का तिनका एक विराट नदी में बह रहा है। उसके बगल में एक दूसरा तिनका भी बह रहा है। पहला बड़ा संघर्षरत है। चाहता है नदी बाएं मुड़े। कभी कहता है दाएं मुड़े। कभी कहता है थोड़ा रुकने का मन है। क्या नदी उसकी बात सुनती है? कभी-कभी संयोग से उसकी इच्छा पूरी हो जाती है। लेकिन वह संयोग मात्र है। दूसरा तिनका मजे में बह रहा है--नदी जहाँ ले जा रही है वहाँ जा रहा हूँ, मेरी अपनी कोई अलग से मंजिल थोड़ी है!

अन्य उदाहरणः एक बड़ी रेलगाड़ी है, उसमें छोटा सा स्क्रू कहीं लगा हुआ है। क्या इस पेंच की अपनी कोई मर्जी हो सकती है? रेलगाडी जहाँ जा रही है वहाँ यह भी जा रहा है।

इस विराट अस्तित्व में हम यहाँ हैं कौन? हम साधारण मनुष्य की बात छोड़ो... यह धरती ही क्या है? इस विराट गैलेक्सी में धूल का कण भी नहीं है। सूरज पृथ्वी से सवा लाख गुना बड़ा है। ऐसे दो अरब सूरज वाली गैलेक्सी में हमारा सूर्य कहीं दिखाई नहीं देता। गैलेक्सी के चित्र में सूरज डस्ट पार्टिकल जैसा भी नहीं है। उसमें कहां है पृथ्वी, कहां मैं एक मनुष्य? मेरे जैसे आठ अरब मनुष्य आज मौजूद हैं। पता नहीं कितने खरब पहले हो चुके? मेरे करने या नहीं करने का सवाल कहाँ उठता है? हू एम आई? होनी होए सो होए। इसका यह मतलब नहीं है कि करना-धरना छोड़ दिया। इसका मतलब यह समझ आ गई कि हम हैं कौन? हम हैं कहां? हम निश्चिंत होकर अपना जीवन जीते हैं, होनी होय सो होय।

जीवन अनंत रहस्य है। जो भी गहन है, सब हो रहा है। छोड़ना भी एक ढंग का नकारात्मक कृत्य है। कौन छोड़ेगा? न कुछ करने को बचता है, न ही करने को बचता है; जो हो रहा है, ठीक! द्रष्टा मात्र। कहैं कबीर मैं हौं वाही को, होनी होय सो होय। मैं इस अस्तित्व का हूं, सब भी इसी का है। स्व और सर्व में भेद नहीं है। भाव पर नजर है, अभाव पर नहीं। क्या मांगना उससे, बिन मांगे जो देय। इतना मिला है, मिलता ही जा रहा है! आश्चर्य है, विस्मय विमुग्ध भावदशा है!!

'बस चकमक लागे नहीं' नामक ओशो साहित्य के अनमोल रत्न के शीर्षक का भावार्थ क्या है?

संत कबीर के जिस दोहे से उपरोक्त शीर्षक ओशो ने चुना, वह इस प्रकार है--

पावक रूपी साइयां, सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागे नहीं, ता ते बुझि बुझि जाय॥

पावक यानी अग्नि। साईं यानी परमात्मा। हम सब जानते हैं कि चकमक पत्थर को रगड़ने से अग्नि पैदा होती है। बिना रगड़ के छिपी है, अप्रगट है। ऐसे ही हमारे भीतर सब मौजूद है--प्रत्येक घट में पावक रूपी परमात्मा विराजमान है। लेकिन हमारे चित्त की, चेतना की चकमक नहीं रगड़ती इसलिए लौ प्रगट नहीं हो पाती, बुझी-बुझी रहती है। उपनिषद के ऋषि कहते हैं--अंतःकरण की अरणि और ओंकार की रगड़ जहाँ होती है, वहां चकमक जैसा कुछ

घटित होता है, परमानन्द फलित हो जाता है। ठीक वही इशारा कबीर साहब का है। इस छोटे से सूत्र में बहुत बड़े आध्यात्मिक रहस्य की बात छिपी है।

दो सूखी लकड़ियों के रगड़ने से आग पैदा हो जाती है। मगर लकड़ियां होनी चाहिए बिलकुल सूखी। वासना की आद्रता न हो। अगर वासनारहित हो जाए मनुष्य तो उसके जीवन में मुहूर्त भर में ऐसी रोशनी प्रगट होती है ऐसी ज्वलंत कि एक मुहूर्त में वह सारे जीवन के सार को पहचान लेता है, सारे जीवन का अर्थ अनुभव में आ जाता है। अधिकांश लोग इस धरती पर बुझे-बुझे जी रहे हैं। चिरकाल से धुआं-धुआं ही होते रहे हैं। अब तो जागो! और तुम्हारे भीतर अग्नि छिपी है; वह सूत्र छिपा है जो तुम्हें उठा दे आकाश की आखिरी ऊंचाइयों तक। तुम्हारे भीतर परमात्मा का गीत छिपा है।

एक प्रवचन में ओशो ने स्वामी योग प्रीतम की यह कविता सुनाई है--

ऐसा कोई गीत नहीं है, जिसमें तेरा राग नहीं हो
ऐसी कोई प्रीत न, जिसमें तेरा मदिर सुहाग नहीं हो
इस जीवन की अंधियारी में
पूर्ण चंद्र-से तुम खिल आए
इस जीवन के सूनेपन में तुमने ये मधुमास जगाए
ऐसा रस बरसाया तुमने, जीवन नई बहार हो गया
ऐसा कोई फूल न, जिसमें तेरा मधुर पराग नहीं हो
ऐसा कोई गीत नहीं है, जिसमें तेरा राग नहीं हो
इस जीवन के हर नर्तन में
तेरी ही प्यारी रुनझुन है
इस जीवन में जो कीर्तन है
बस उसमें तेरी ही धुन है
तुम हो इस जीवन के मधुवन, तुम ही हो प्राणों के गुंजन
बिना तुम्हारे खेला जाए, ऐसा कोई फाग नहीं है
ऐसा कोई गीत नहीं है, जिसमें तेरा राग नहीं हो
ऐसी कोई प्रीत न, जिसमें तेरा मदिर सुहाग नहीं हो
मेरे भावाकुल अंतस में
शोभित है शृंगार तुम्हारा
मेरा यह संन्यास तुम्हारा
मेरा यह संसार तुम्हारा
मेरे मन के वृन्दावन में, निशि-दिन रास रचाते हो तुम
ऐसी कोई लगन नहीं है, जिसमें तेरी आग नहीं हो
तुम हो इस जीवन के मधुवन, तुम ही हो
प्राणों के गुंजन बिना तुम्हारे खेला जाए,
ऐसा कोई फाग नहीं है ऐसा कोई गीत नहीं है,
जिसमें तेरा राग नहीं हो

कविता सुनाकर ओशो कहते हैं--*वह तो छिपा पड़ा है तुम्हारे भीतर। चित चकमक लागे नहीं! बस जरा चित्त को चकमक लगानी है, जरा सूखा करना है। जरा वासना की आर्द्रता कम करनी है। और फिर तुम एक क्षण में प्रज्वलित हो उठोगे।*

ओशो साहित्य के इस अनमोल रत्न के शीर्षक का क्या आशय है- 'कस्तूरी कुंडल बसै'?

संत कबीर का पूरा वचन इस प्रकार है-

कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूढ़ै वन माहिं।

ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखै नाहिं॥

कस्तूरी मृग के बारे में सबने सुना होगा। उसकी नाभि में स्थित कस्तूरी की मादक सुगंध जब बाहर फैलती है तो वह समझता है कि कहीं दूर से सुवास आ रही है। भागता है--कहाँ से आ रही? टकराता है वृक्षों से। कहीं लताओं में पैर उलझ जाता, कहीं गड्ढे में गिरता, बहुत चोटें खाता। बड़े दुख पाता है। उसे पता नहीं कि कस्तूरी उसकी नाभि में ही छुपी है।

ठीक ऐसी ही स्थिति हमारी है। हमारे भीतर ही आनंद का स्रोत है और हमें उसके बारे में पता नहीं। उसकी प्रतिध्वनि बाहर से झलकती है। कभी लगता है धन में आनंद आ रहा है। कभी लगता है स्त्री से, पुरुष से आनंद आ रहा है। कभी लगता है पावर पॉलिटिक्स में मज़ा आ रहा है। कभी कुछ और भ्रम, कभी कुछ और भ्रांति, हम जगह-जगह भागते हैं, विभिन्न दिशाओं में दौड़ते हैं। सब जगह अपना सिर खपाते हैं, हाथ-पैर तोड़ते हैं। बाहर मिलता कहीं कुछ भी नहीं, क्योंकि उसका स्रोत तो हमारे भीतर मौजूद है।

कबीर साहिब कहते हैं, कस्तूरी मृग की तरह ही मनुष्य है। सारी दुनिया जिस आनंद की तलाश में व्यस्त है, व्याकुल है, वह परमानंद रूपी परमात्मा, शांति का खजाना स्वयं के अंदर है। ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखै नाहिं॥

वह राम-नाम का मधुर स्वर, दिव्य संगीत, ब्रह्म-नाद हमारे भीतर निरंतर गूंज रहा है लेकिन हम बाहर भागदौड़ में लगे हुए हैं। अपने विचारों के शोरगुल में ऐसे व्यस्त हैं, कल्पनाओं और स्मृतियों के बाजार में ऐसे उलझे हैं, कि 'राम' की धीमी सी आवाज कहां सुनाई देगी!

संत कबीर ही नहीं, दुनिया के समस्त संत यही कहते हैं कि बाहर की आपाधापी छोड़ो और अपने भीतर थोड़ी देर के लिए रम जाओ। अंदर देखो, अंदर सुनो। भीतर रमने पर वह नाद सुनाई देता है जिसकी आवाज राम-राम जैसी अथवा ओम ओम जैसी कही जा सकती है। अनाहत नाद को सुनकर, उसमें डूबकर एकात्म हो जाना ही समस्त अध्यात्मिक साधनाओं का लक्ष्य है। अंदर देखने पर प्रभु का प्रकाश दिखाई देता है। संतों ने उसी को ओमप्रकाश पुकारा है।

मगर लोग मंदिर-मस्जिद, चर्च-गुरुद्वारों में, तीर्थस्थानों और पवित्र नदियों की तरफ जा रहे हैं। आश्चर्य, खुद में विराजमान खुदा को नहीं देखते! ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखै नाहिं। कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूढ़ै वन माहिं। मृग को तो क्षमा किया जा सकता है, बेचारा नासमझ पशु है! किंतु स्वयं को बड़ा ज्ञानी और समझदार समझने वाला इंसान भी ऐसी भयंकर भूल कर रहा है कि भीतर विराजमान भगवान को खोजने बाहर-बाहर जाता है।

कबीर साहब में कौन सी आग्नेय चिंगारी क्रांतिकारी सदगुरु ओशो ने देखी कि कबीर-वाणी पर हुई एक अंग्रेजी व्याख्यामाला का शीर्षक रखा- 'दि रिवोल्युशन' अर्थात क्रांति?

कबीर साहब से बड़ा क्रांतिकारी व्यक्ति अतीत में नहीं हुआ। जैसे अल्बर्ट आइंस्टीन के बाद क्लासिकल फिज़िक्स पीछे रह गई और रिलेटिविटी के बाद की फिजिक्स अलग हो गयी। फिर नील्स बोर एवं हाइजनबर्ग के बाद क्वांटम फिजिक्स बिल्कुल अलग ही आयाम में छलांग लगा गई। पीछे का सारा सिलसिला ही मानो टूट गया। 300-350 साल का वैज्ञानिक विकास और अचानक पता चला कि सचाई कुछ और ही है।

अगर हम कबीर साहब के क्रांतिकारी दृष्टिकोण को समझें तो ठीक ऐसा ही लगेगा, जैसा रिलेटिविटी और क्वांटम थ्योरी जन्मने पर भौतिकी के संग हुआ।

कबीर साहब के पहले तक आध्यात्मिक व्यक्ति को त्यागी होना पड़ता था, तपस्या करनी पड़ती थी, घर-गृहस्थी, परिवार-संसार छोड़ना पड़ता था, कामधाम, दुकान-मकान, खेत खनिहान, आजीविका उपार्जन त्यागना अनिवार्य था। जंगल की गुफा में जाकर रहना होता था, समाज और शहर से दूर, सुख सुविधाओं से परे, सब प्रकार के कष्टों में। कबीर साहब प्रथम क्रांतिकारी व्यक्ति हैं, जिन्होंने कहा इस सब की कोई जरूरत नहीं। वे एक सामान्य जीवन, जैसा सब हम सब जीते हैं, वैसा ही जीते रहे। जो काम करते थे जीवन भर करते रहे। उनकी पत्नी थी, बच्चे थे, धनोपार्जन करते थे, दिन भर कपड़े बुनते थे, शाम को कपड़ा बेचने बाजार जाते थे, दुकान लगाते थे। धर्म-साधना की पुरानी परिभाषाओं में उन्होंने आग लगा दी। इससे बड़ी कोई क्रांति नहीं हो सकती।

कबीर के बाद संतों का एक नया ही वर्ग खड़ा हो गया। गुरु नानक देव एवं उनके बाद 10 गुरु साहिबान आए। आपको जानकर हैरानी होगी कि गुरु ग्रंथ साहब में जिन संतों की वाणी संकलित की गई है, वे सब गृहस्थ थे। एक नया ही सिलसिला शुरू हुआ। फिर रामकृष्णा परमहंस हुए। सिलसिला आगे बढ़ा, फिर ओशो आए। उन्होंने इस बात को उसके वैचारिक निष्कर्ष, लॉजिकल कन्क्लूजन पर, क्लाइमैक्स तक पहुंचा दिया। उन्होंने बड़ी तर्कसंगत धारणा दी-- 'नया मनुष्य' जोरबा दी बुद्धा। धर्म और विज्ञान का समन्वय, पूरब और पश्चिम का मिलन। गृहस्थ और संन्यस्थ का भेद मिटा दिया। ओशो ने नव-संन्यास दीक्षा शुरू की। घर गृहस्थी में रहते हुए, आजीविका कमाते हुए आप ध्यानी भी हो सकते हो, भक्ति में डूब सकते हो।

वास्तव में कबीर साहब ने हजारों साल पुरानी एक व्यर्थ की धार्मिक पंरपरा में आग लगा दी। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, राम, आदि शंकराचार्य जैसे बड़े-बड़े अध्यात्म के महारथी जिस मार्ग पर चले थे और हम सबने मान ही लिया था कि प्रभु प्राप्ति हेतु त्याग-तपस्या जरूरी है; कबीर ने सिद्ध कर दिया कि वह सब अनावश्यक बोझ है।

दूसरी बात और याद रखना अभी मैंने जो नाम गिनाए हैं, अधिकांश लोग उसमें राजघरानों से आए। गौतम सिद्धार्थ, भगवान बुद्ध हो गए। राजकुमार वर्धमान, महावीर तीर्थंकर हो गए। कृष्ण और राम भगवान हो गए, बात आसान लगती है। लेकिन याद रखना हमारे लिए आशा की किरण नहीं जागती, हम सामान्यजन उन जैसी स्थिति में नहीं हैं। किंतु कबीर जैसे साधारण, अनपढ़, ग्रामीण, गृहस्थ व्यक्ति ने परम ज्ञान पा लिया, इसमें हम सबको आशा की किरण दिखाई देती है, हम भी पा सकते हैं। बुद्ध और महावीर दूर के चमकते सितारे हैं, कितने ही आकर्षक हों मगर हमारी पहुंच के बाहर हैं।

यही संत कबीर की अनूठी एंव अद्वितीय क्रांति है। ओशो ने ठीक ही किया जो अपनी किताब का शीर्षक रखा 'दि रिवोल्यूशन'। जैसे भौतिकी में क्रांति हुई आइंस्टीन और हाइजनबर्ग से, ठीक वैसे ही समझना धर्म जगत में क्रांति कबीर साहब से हुई।

ओशो ने अपनी एक हिन्दी किताब का शीर्षक कबीर का यह वचन क्यों चुना- 'जो घर बारै आपना'?

महत्वपूर्ण सवाल पूछने के लिए धन्यवाद। यह दोहा तो सबने सुना ही है-

कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।

जो घर बारै आपना, चले हमारे साथ॥

कौन से घर को जलाने की बात कर रहे हैं? वह जो पत्थर-ईंट-सीमेंट से बना है उसकी बात नहीं कर रहे हैं। एक और सुरक्षा का आवरण हमने बना रखा है--सिद्धांतिक, वैचारिक, भावनात्मक, अंधविश्वासों एवं धारणाओं का कवच। निश्चित रूप से कबीर उसी घर को जलाने की बात कर रहे हैं।

दुनिया में दो तरह के महात्मा हैं। एक, सच्चे संत जिनसे क्रांति का जन्म होता है; जिनसे सूत्रपात होता है किसी दीये का, कोई ज्योति जलती है। और दूसरे, झूठे संत जो पुराने दीयों की प्रतिष्ठा का सहारा लेकर प्रतिष्ठित होते हैं--पुराने के पक्षपाती हैं। जरा भी काटने की, तोड़ने की हिम्मत नहीं है। पोषक हैं परंपरा के। भीड़ उनका सम्मान करती है।

यहूदियों ने जीसस से बड़ा बेटा पैदा नहीं किया मगर यहूदियों ने उसी सुपुत्र को घर के बाहर कर दिया। मोटे-छोटे धर्मगुरु भी स्वीकृत हैं; जो पुराने के समर्थन हैं। जीसस स्वीकृत नहीं, पूरी तरह तिरस्कृत हैं। वे तुम्हारी जड़ें हिला देते हैं। वे तुम्हारे पुराने भवनों को गिरा देते हैं। वह नई सुबह की बात करते हैं। उस नई सुबह तक थोड़े से हिम्मतवर लोग ही जा सकते हैं।

तो कबीर कहते हैंः जो घर बारै आपना चले हमारे साथ। कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ। कायरों के इस बाजार में, भेड़ों की भीड़ में ललकारते हैं, डंडा बजाते हैं--लिए लुकाठी हाथ। मगर साहसी शिष्य मिलना मुश्किल है, जो सुविधाओं के घेरे से बाहर छलांग लगा सके।

झूठे संत तुम्हारे पुराने घर में ही लीपा-पोती कर देते हैं, छपाई कर देते हैं, रंग बदल देते हैं, पुराना घर, उसी को साज-संवार देते हैं कि मजे से रहो, यह तो बड़ा प्यारा घर है, यह तो कितने महापुरुषों ने बनाया, इसको छोड़ कर कहां जाते हो! और कबीर कहते हैंः जो घर बारै आपना, चले हमारे संग। ये किस घर की बात कर रहे हैं? यह संस्कार, संस्कृति, सभ्यता, धर्म, पुरातन का जो घर है, इसे जला दो, तो ही तुम आगे बढ़ पाओगे। अन्यथा यह धूल तुम्हारे दर्पण को घेरे ही रहेगी।

सच्चा संत वही है जो नये को अवतरित करता है; जो जगत में परमात्मा को फिर से लाता है। बाकी नेतागण हैं; संत नहीं, उनकी अपनी कलाएं हो सकती हैं, अपनी चालाकियां और कुशलताएं होंगी।

सत्य तो सदैव क्रांतिकारी होगा, बगावती होगा, विद्रोही होगा। होगा ही; क्योंकि भीड़ असत्य में जीती है। जब भी सत्य आएगा, तो समाज से टक्कर होगी। तो ही किसी को रूपांतरित कर सकता है। जब भी कोई आदमी धर्म के अनुभव को उपलब्ध होता है तो वह परमात्मा का नया आविर्भाव है, नई तरंग है। उसका अतीत से कोई संबंध नहीं है। वह अतीत की पुनरुक्ति नहीं है। वह पीछे का दोहरावा नहीं है।

सत्य तो समयातीत है; उसका समय से कोई संबंध नहीं है। परंपरा का कोई संबंध नहीं। कबीर ने अपनी आंख खोली; बुद्ध ने अपनी आंख खोली। दोनों ने अपनी आंख खोल कर देखा। आंख पर बंधी परंपरा की पट्टी हटाई तब सत्य उजागर हुआ। उस अंधविश्वास की पट्टी को, अपने मानसिक कारागृह को हमने अपना गृह समझ लिया है। कबीर उसे ही जलाने की चुनौती दे रहे हैं।

क्या कबीर जयंति पर आप हमें बताएंगे कि ओशो की दृष्टि में कबीर के क्या हैं?

सर्वप्रथम, कबीर जयंति के पावन पर्व पर हम सबको बधाई। यह बताते हुए हर्ष होता है कि भगवान श्री रजनीश ने संत शिरोमणि कबीर के वचनों को अपनी 30 किताबों का शीर्षक चुना। उन्होंने कबीर साहब पर हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रवचन दिए। कृष्ण, पतंजलि, ईसा मसीह, बुद्ध और महावीर के समान ज्योतिर्मय पुरुष के रूप में उन्हें

समस्त विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया। कुछ प्रवचनमालाएं ऐसी भी हैं जिनमें कबीर साहब पर व्याख्यान नहीं हैं किंतु उनका शीर्षक कबीर-वचनों पर आधारित है।

निश्चित ही ओशो द्वारा ऐसा करने से जाहिर होता है कि उन्हें कबीर साहब से कितना अगाध प्रेम है! ओशो ने किताबों के जो शीर्षक चुने हैं, बड़े काव्यात्मक और प्रेरक हैं। जैसे रसायन शास्त्र के छोटे-छोटे फार्मूले के अंदर बहुत बड़ी घटनाओं के राज छिपे होते हैं, वैसे ही ओशो-साहित्य के शीर्षक, अध्यात्म के रहस्य को बड़े संक्षेप में उजागर करते हैं। आज कबीर पूर्णिमा के उपलक्ष में हम इन धर्म-सूत्रों की, स्प्रिचुअल फार्मूलों की संपूर्ण सूची देखेंगे—

1. एक्सटैसीः द फॉरगॉटन लैंग्वुएज
2. *घाट भुलाना बाट बिनु*
3. घूंघट के पट खोल
4. *ढाई आखर प्रेम का*
5. कहै कबीर मैं पूरा पाया
6. *कहै कबीर दीवाना*
7. कस्तूरी कुंडल बसै
8. *माटी कहै कुम्हार सूं*
9. मैं कहता आँखन देखी
10. *मेरा मुझमें कुछ नहीं*
11. चित चकमक लागे नहीं।
12. *जिन खोजा तिन पाइयां*
13. होनी होय सो होय
14. *पीवत रामरस लगी खुमारी*
15. समुंद समाना बूंद में
16. *सहज मिले अविनासी*
17. सहज समाधि भली
18. *सुनो भाई साधो*
19. द रिवोल्युशन
20. *द डिवाइन मेलोडी*
21. द फिश इन द सी इज नॉट थर्स्टी
22. *द पाथ ऑफ लव*
23. द गेस्ट
24. *देख कबीरा रोया*
25. चेति सकै तो चेत
26. *ज्यों की त्यों धरि दीन्हि चदरिया*
27. जो घर बारै आपना
28. *अकथ कहानी प्रेम की*
29. गहरे पानी पैठ
30. *गूंगे केरी सरकरा*

अब आप अच्छे से समझ गए होंगे कि ओशो की दृष्टि में कबीर का क्या और कितना मूल्य है?

कहा जाता है कि ज्ञान बांटने से बढ़ता है, परंतु मुफ्त मिले ज्ञान का कोई आदर नहीं होता पैसे खर्च कर के ज्ञान लेने वाले की ही महत्ता होती है इस पर आपकी दृष्टि क्या है ?

हम जिसे ज्ञान कहते हैं, वह वास्तव में जानकारी मात्र हैं। असली ज्ञान कुछ और ही बात है जो बांटने से बढ़ता है। जानकारी तो बोझ स्वरूप है, जिसे लेने वाला भारी हो जाता है।

संत कबीर साहब क्यों बारंबार कहते हैं--'कहै कबीर दीवाना?' संत मीराबाई भी स्वयं को मीरा दीवानी क्यों पुकारती हैं?

वे व्यंग्य में कह रहे हैं। उनका कटाक्ष समझो। प्रसन्न, शांत, प्रेमपूर्ण, करुणावान, परमानंद में जीने वाले व्यक्ति को समाज पागल समझता है। कबीर अनूठे हैं। और प्रत्येक के लिए उनके द्वारा आशा का द्वार खुलता है। क्योंकि कबीर से ज्यादा साधारण आदमी खोजना कठिन है। अगर कबीर पहुंच सकते हैं, तो सभी पहुंच सकते हैं। पढ़े-लिखे होने से, जाति-पाति से परमात्मा का कुछ लेना-देना नहीं है। कबीर जीवन भर गृहस्थ रहे। कुछ भी ने छोड़ा और सभी कुछ पा लिया। इसलिए छोड़ना पाने की शर्त नहीं हो सकती। कबीर के जीवन में कोई भी विशिष्टता नहीं है। इसलिए विशिष्टता अहंकार का आभूषण होगी; आत्मा का सौंदर्य नहीं।

कबीर न धनी हैं, न ज्ञानी है, न समादृत हैं, न शिक्षित हैं, न सुसंस्कृत हैं। कबीर जैसा व्यक्ति अगर परमज्ञान को उपलब्ध हो गया, तो किसी को भी निराश होने की जरूरत नहीं। कबीर में बड़ी आशा है। बुद्ध या महावीर या जनक अगर पाते हैं तो पक्का नहीं की तुम पा सकोगे। बुद्ध को ठीक से समझोगे तो निराशा पकड़ेगी; हाथ-पैर ढीले पड़ जाएंगे। बुद्ध के पास तो अनुभव से आ जाती है बात; कबीर को तो समझ से ही लानी पड़ेगी।

आगामी पूर्णिमा को कबीर जयंति के पावन पर्व पर सब अध्यात्म प्रमियों को बधाई। भगवान श्री रजनीश ने संत शिरोमणि कबीर के वचनों को अपनी 30 किताबों का शीर्षक चुना। उन्होंने कबीर साहब पर हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रवचन दिए। कुछ प्रवचनमालाएं ऐसी भी हैं जिनमें कबीर साहब पर व्याख्यान नहीं हैं किंतु उनका शीर्षक कबीर-वचनों पर आधारित है। निश्चित ही ओशो द्वारा ऐसा करने से जाहिर होता है कि उन्हें कबीर साहब से कितना अगाध प्रेम है!

हिन्दी में--कहै कबीर दीवाना, कहै कबीर मैं पूरा पाया, सुनो भाई साधो, गूंगे केरी सरकरा, मेरा मुझमें कुछ नहीं, होनी होय सो होय, घूंघट के पट खोल, कस्तूरी कुंडल बसे। अंग्रेजी में--एक्सटैसीः द फॉरगॉटन लैंग्वुएज, द गेस्ट, द डिवाइन मेलोडी, द पाथ ऑफ लव, द फिश इन द सी इज नॉट थर्स्टी, द रिवोल्युशन।

सैद्धांतिक रूप से समझने ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक एवं प्रायोगिक रूप से अनुभव करने के लिए ओशो फ्रेगरेंस के इस शिविर में भाग लीजिए— "कहै कबीर दीवाना"

ओशो एवं भगवान बुद्ध

करुणा की साकार मूरत, भगवान बुद्ध के इस उपदेश का भावार्थ क्या है 'जिस तरह एक जलते हुए दीए से हजारों दीए रोशन किए जा सकते हैं, फिर भी उस दीए की रोशनी कम नहीं होती। उसी तरह खुशियां बांटने से हमेशा बढ़ती हैं कभी कम नहीं होतीं'?

फकत एक दीप की लौ से हजारों दीप जलते हैं
जहां के कोने-कोने से अंधेरे साए मिटते हैं।
जरा तुम अपनी खुशियां किसी को बांटकर देखो
खुशी को बांटने ही से खुशी के फूल खिलते हैं।

सब ने यह जीवन में अनुभव किया होगा इसलिए दान का बड़ा महत्व है। दान धर्म का मूल कहा जाता है एक्चुअली दान का यह मतलब नहीं है कि आप पैसे बांट रहे हो। दान का मतलब है कि आप स्वयं को बांट रहे हो। किसी को देख कर मुस्कुरा सकते हो, किसी को एक गीत सुना सकते हो, किसी को एक गिलास पानी पिला सकते हो।

एक बार की बात है एक भिखारी भिक्षा मांग रहा है और रास्ते से एक सज्जन जा रहे हैं तो जब वह भिक्षा मांगता है तो उसने कहा कि अपना हाथ उस भिखारी के हाथ में रख दिया और कहा मित्र भाई आज मेरे पास पैसे नहीं है। मैं कल जब मेरे पास पैसे होंगे जरूर दूंगा।

उस भिखारी की आंखों में आंसू आ गए उसने कहा इतना बड़ा दान तो आज तक मुझे किसी ने नहीं दिया तुमने मुझे भाई कहा अब दोबारा भी मुझे यही दान आपसे चाहिए। आप जब भी यहां से निकलो यह हाथ हाथ से मत छुड़ाना। जब कभी आप निकलो यह दान मुझे जरूर देना मेरी आत्मा तृप्त हो गई आज। इतना मिला मुझे कभी तो इतने नहीं आए आज आपने जो दिया तृप्त हो गया मैं तो।

दान का अर्थ है अपनी आत्मा को देना, स्वयं को देना किसी को देखकर मुस्कुरा दिया, किसी की बात सुन ली शांति से, यह भी तो दान है। किसी जरूरतमंद को जो जैसी जरूरत है पूरा कर देना, यह भी तो दान है। और जब हमने अनुभव किया कि जब हम किसी के लिए कुछ करते हैं तो क्या होता है कितना फैलाव होता है हम फैला हुआ महसूस करते हैं। और जब हम किसी से लेते हैं तब भी देखना कितना सिकुड़ा हुआ महसूस करते हैं कैसे हम सिकुड़ जाते हैं और देने से कैसे हम फैल जाते हैं।

इसलिए भगवान बुद्ध ने कहा की समाधि कभी पूरी नहीं होगी जब करुणा साथ में होनी चाहिए। समाधि और करुणा, मंगल भावना। उन्होंने बहुत मंगल भावना पर कहा अपने शिष्यों से कहा अपने भिक्षुओं से कहा कि तुम राह पर चलते हुए जो भी दिखे उसके लिए मंगल कामना से भर जाना। एक भिक्षु ने कहा करना क्या है हम मंगल कामना करेंगे उनका मंगल हो जाएगा। भगवान बुद्ध ने कहा उनका हो ना हो तुम्हारा मंगल हो जाएगा तो तुम दो तुम बांटो। भिक्षु क्या बांट सकता है, मंगल कामना से ज्यादा क्या बांट सकता है अपनी करुणा से ज्यादा क्या दे सकता है।

भगवान बुद्ध बिल्कुल ठीक कहते हैं कि 'जिस तरह एक जलते हुए दीए से हजारों दीए रोशन किए जा सकते हैं, फिर भी उस दीए की रोशनी कम नहीं होती। उसी तरह खुशियां बांटने से हमेशा बढ़ती हैं कभी कम नहीं होतीं।'

बुद्ध ने समझाया कि 'हमेशा क्रोधित रहना ऐसे है जैसे कोई जलते हुए कोयले को, किसी दूसरे व्यक्ति पर फेंकने की इच्छा से अपनी मुट्ठी में पकड़कर रखता हो। वह क्रोध सबसे पहले उसको ही जलाता है।' कैसे हम गुस्से के इस जलते हुए कोयले को छोड़ें?

क्रोध एक एनर्जी है ऊर्जा है। ऐसे समझो जब हमें क्रोध आ गया तो हमारे भीतर हार्मोन छूटते हैं, एड्रेनेलिन एक हार्मोन का नाम है। अब जब वह छूटता है वह हार्मोन जो है फाइट या फ्लाइट के लिए है। मांसपेशियों को अकड़ा देगा, आपके भीतर आपकी हार्टबीट ज्यादा कर देगा, ब्लड प्रेशर बढ़ जाएगा एकदम आप ऊर्जावान हो जाएंगे ताकत आ जाएगी या तो लड़ने की ताकत है जिसमें वह लड़ेगा या चाहे तो उस ताकत को किसी और चीज में लगाए जैसे कुत्ता और बिल्ली, कुत्ते को देखकर बिल्ली में भी वही हार्मोन छूटते हैं लेकिन बिल्ली डर के ऊपर चढ़ गई, वहां जाकर रिलैक्स हो गई और कुत्ता जो है उसके पीछे भागा। यह प्रकृति ने दिए हैं तो अब करना क्या है क्रोध तो आएगा परिस्थितियां भी आएगी सब कुछ आएगा तो करना क्या है?

क्रोध में खून उबल जाता है,
चैन का शहर भी जल जाता है।
ध्यान की रोशनी करके देखो,
क्रोध करुणा में बदल जाता है।

ओशो ने इसकी बहुत ही सुंदर विधि बताई है ना तो एक्सप्रेशन करना ना ही दमन करना। आप एक्सप्रेस करोगे किसी को तो अगला भी स्वतंत्र है आपको एक्सप्रेस करने के लिए अपना क्रोध, तो यह चेन चलती रहेगी, यह सब चेन रिएक्शन चलता ही रहेगा तो फिर कैसे चैन मिलेगा इसमें? और लेकिन अब क्रोध दबा लिया तो हमें चैन नहीं मिलेगा फिर, भीतर मांसपेशियां अपना काम करेगी वह ग्रंथियां बनाएगी, डिप्रेशन आएगा दुख में बदल जाएगा। यह क्रोध तो क्या करें इसके लिए इसका रूपांतरण करना है यह क्रोध ऊर्जा है जैसे बिजली विद्युत, लाइट क्या है ऊर्जा हैस अब यह गर्म और ठंडी नहीं है, अगर हम इससे फ्रीज चलाएं तो यह ठंडी लगेगी, अगर हम इससे हीटर चलाएं तो यह गर्म लगेगी।

ऊर्जा तो न्यूट्रल है हम उसका सदुपयोग कर रहे हैं या दुरुपयोग कर रहे हैं यह सीखना होगा हमें। जब मान लो हमें क्रोध आ गया अब क्या करना है? चले जाओ बगीचे में। हमारे एक मित्र थे बहुत ही प्यारे गीत गाते थे और काफी उनकी उम्र थी 60 साल, पहले की बात हैस तो वह गाना गाया करते थे हमारे घर आया करते थे। उन्होंने बताया कि उन्हें बहुत क्रोध आ जाता है बहुत ही पीड़ित रहता हूं। फिर थोड़े दिन बाद आए बिल्कुल खुश, प्रसन्न, शांत। तो हमने पूछा अब क्या आजकल, खुश दिखते हैं, प्रसन्न दिखते हैं, शांत दिखते हैं क्या कर रहे हैं आप? तो बोले मुझे अब एक टेक्निक मिल गई है मुझे जब भी क्रोध आता है मैं साइकिल लेता हूं और सारे देवी देवताओं को प्रणाम करने के लिए एक एक मंदिर चले जाता हूं दूर 25 किलोमीटर तक और जब लौटता हूं तो पाता हूं आनंद शांति मेरे साथ चली आ रही है।

इसके इनव्यूशन ने बता दिया कि अब करना क्या है। इसने अपनी सारी शक्ति का उपयोग कर लिया। ऐसे ही जब आपके भीतर क्रोध आता है दबाना नहीं है नहीं आया, सोचकर नहीं आया ऐसे नहीं होता है दिला दिया किसी ने अब क्या करना है बागवानी करो तेरो, हंसो। हंसने से भी ट्रैक बदल जाएगी बात बदल जाएगी, अब चैनल ही बदल जाएगी, एक्सरसाइज करो योगाभ्यास करो, गाना गाओ, बदल जाएगी बात, कुछ सृजनात्मक ढंग दे दो बात ही बदल जाएगी।

दूसरी, सांस का परिवर्तन कर लो सांस और भाव दशाएं तो जुड़ी हुई है भगवान बुद्ध की विपस्सना इसके लिए हम करने ही जा रहे हैं इस प्रोग्राम मेंस कि कैसे जब हम अपनीश्वास को देखते हैं तो कैसे वह बदल जाती है? कैसे भीतर शांति उतरने लगती है? कैसेश्वास धीरे-धीरे धीमी होती जाती है और लयबद्ध होती जाती है? और एक अलग तरह की शांति में हम उतरने लगते हैं सब कुछ चेंज हो जाता है। भीतर अथाह शांति आती है और उस अथाह शांति में हम अपने स्वरूप में आसानी से स्थित हो जाते हैं जोकि आनंद और अमृत से ओतप्रोत है।

भगवान बुद्ध का यह संदेश, ओशो के उपदेश से बिल्कुल मिलता-जुलता सा क्यों लगता है- 'भविष्य के सपनों में मत खो जाओ, भूतकाल में मत उलझो, सिर्फ वर्तमान पर ध्यान दो। जीवन में खुश रहने का यही एक सही रास्ता है'?

सत्य एक है, तो सभी जागृत चेतनाओं का संदेश भी एक ही होगा। केवल आत्मिक मूर्च्छा में जीने वाले भिन्न-भिन्न बातें कह सकते हैं। क्योंकि वे सपने देख रहे हैं। सत्य सार्वभौम होता है, सपने निजी होते हैं। विज्ञान एक है, गणित एक है, तो अध्यात्म का सत्य अलग-अलग कैसे हो सकता है?

ठीक बुद्ध-वचन के ही समान योग वशिष्ठ का यह सूत्र है-

भविष्यं नानुसंधत्ते नातीतं चिन्तयत्यसौ।
वर्तमान निमेषं तु हसन्नेवानुवर्तते॥
मत करो भविष्य का अनुसंधान, अतीत की चिंता में ना गवाओ प्राण, हंसते हुए जियो आनंद मग्न वर्तमान।

कल हुआ क्या था उसी का मलाल करते हैं
होगा कल क्या सदा इसका ख्याल करते हैं।
जिंदगी तो है इसी पल अभी यहीं जी लें
यह मजा छोड़ कर हम क्यों बवाल करते हैं?

अतीत, पास्ट इज़ नो मोर अब नहीं है। भविष्य अभी आया नहीं है नॉट येट। दो नहीं के बीच में जो है, दो कलों के बीच में क्या है। वर्तमान का छोटा सा पल दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय। चुक जाते हैं और वही है बाकी दो नहीं है और जो है दो नहीं के कारण हम चूक जाते हैं और वही है बाकी दो नहीं है और जो है दोनों के कारण चूक जाते हैं क्योंकि हमारी नजर वही है, हमारी नजर वहीं पर है सदा। सुख दुख की कितनी फाइलें रखी है इसमें। शब्दों की कितनी फाइलें रखी है इसमें। कौन कहता है कि सीने में अलमारी नहीं होती, कौन कहता है कि सीने में अलमारी नहीं होती।

अरे अलमारी में ढेर पर ढेर फाइलों के ढेर पर ढेर है, अब जो फाइल चाहिए होती है वही नहीं मिलती इतनी सारी ढेर हो गई कि कबाड़ हो गया। इनफेक्ट ऐसा कहो कि हमारी हृदय की अलमारी रीसाइकल बिन के समान हो गई है। गोल गोल सब घूमता ही रहता है। पहले रिसाइकल बिन में डाला फिर वापस डेस्कटॉप पर ले आया फिर वापस डाला फिर कहीं और काम पर ले लिया, फिर उसको डिलीट कर दिया फिर वापस ले लिया, ऐसा ही चलता रहता है पूरे जीवन में, पूरा अपने गार्बेज को हम जुगाली करते ही रहते हैं। ऐसा ही सिलसिला चलता रहता है।

अतीत जो कि नहीं है और भविष्य जोकि आया नहीं है इस बीच जो यह वर्तमान का क्षण है यही शाश्वत की पकड़ है, अगर पकड़ना है क्योंकि शाश्वत में ही आनंद है और आनंद का द्वार वर्तमान है और हम सोचते हैं कि भविष्य में मिलेगा आनंद। और हमारा भविष्य है क्या हमने जो अतीत में अनुभव किया था, उसमें जो जो ठीक नहीं था उसको डिलीट कर दो बाकी अच्छा-अच्छा बचाकर उसमें और कुछ जोड़ लो जैसा हम चाहते हैं जो चलता रहता है सिलसिला। सुधार के बेहतर अतीत को जब सुधार कर बेहतर बनाकर रिपीट करने की चाहत ही है और यह कामना है।

निर्वाण का अर्थ होता है, बाण का अर्थ होता है कामना। और निष्कामना जब तक नहीं होगी तब तक निर्माण नहीं होगा, मुक्ति नहीं होगी। तो कामना ही बंधन है, निष्कामना कैसे होगी? वर्तमान में जीने से कामना तो भविष्य की होती है और वह भी अतीत से लथपथ रहेगा हमेशा जुड़ा रहेगा हमेशा कुछ नया क्योंकि जिस को जानते नहीं उसको कैसे कामना करोगे। जिस से परिचित हो वैसा ही तो तुम कुछ चाहोगे।

तो निष्कामना में ही आनंद है, मुक्ति है, मुक्ति का द्वार है। और हम हमेशा अतीत और भविष्य, पास्ट एवं फ्यूचर में जीते हैं और दवू जो च्तमेमदज है दवू उसको छोड़ देते हैं। जो दवू में नहीं जीता वह नास्तिक है, जो वर्तमान में नहीं जीता वह नास्तिक है। एक बार एक नास्तिक जो है अपने बेटे को लेकर सिखा रहा था पढ़ना। उसके घर के बाहर घुम रहा था, उसके घर के बाहर एक तख्ती लगी हुई थी, गॉड इज नोव्हेयर।

बेटे से कहा उसने बेटा पढ़ो क्या लिखा है इस तख्ती पर? बेटा अभी अभी पढ़ना सीखा था, उसने पढ़ा और कहा पापा गॉड इज नाउ हियर। नास्तिक तो हक्का-बक्का रह गया, चौकन्ना रह गया। बोला कि यह भी हो सकता है यह दृष्टि भी हो सकती है उसकी तो आंखें इस छोटे बच्चे ने खोल दी गॉड इज नाउ हियर।

तो इस वर्तमान में जिसने जीना सीख लिया उसने अमृत को पा लिया, उसने आनंद को पा लिया, उसने निर्वाण में प्रवेश कर लिया, ध्यान में प्रवेश कर लिया। कबीर साहब का वचन है दो पाटन के बीच में बाकी बचा न कोई, यह दो पाटन क्या है? यह दो पाटन यही है फ्यूचर एंड पास्ट अतीत एवं भविष्य। इसी पाटन में जब हम डोलते रहते हैं इसमें कोई बाकी बचता नहीं है हमारा वर्तमान इसमें मसलता जाता है, मिटता जाता है, मरता जाता है और हम ऐसे ही मरे मरे जीते चले जाते हैं। जीवन का नाम है वर्तमान।

ओशो के अनुसार इसी क्षण जीने की कला ही अध्यात्म है। ठीक यही समस्त बुद्धों ने तीर्थंकरों ने, अवतारों ने कहा है।

परम सत्य के मार्ग पर चलने वाले साधक से कौन-कौन सी गलतियां हो सकती हैं? क्या भगवान बुद्ध से भी कोई भूल-चूक हुई?

राजकुमार गौतम सिद्धार्थ से अवश्य भूल हुई होंगी, लेकिन भगवान बुद्ध से नहीं। स्वाभाविक है कि अज्ञान में गलतियां हों, ज्ञान में असंभव हैं। बुद्ध ने कहा है कि सत्य के मार्ग पर चलते हुए व्यक्ति केवल दो ही गलतियां कर सकता है। पहली, पूरा रास्ता तय ना करना और दूसरी उससे भी बड़ी, यात्रा की शुरुआत ही ना करना।

हमें दो ही बातें राहे खुदा में याद रखना है

सफर आगाज करना है सफर पूरा भी करना है।

भटकने का भय से आदमी शुरुआत ही नहीं करता है। आरंभ ही नहीं करता है कि भटक ना जाए और कुछ शुरू करते हैं तो अधूरे ही चलते हैं। वह जो संकल्प की जो त्वरा चाहिए वही नहीं है। कहना चाहिए कि संकल्प की कमी, आधे रास्ते से ही लौट आते हैं। बात बनती नहीं कुछ दिन ध्यान किया, थोड़ा एक्सपीरियंस किया खत्म हो गया। उसी एक्सपीरियंस को चार लोगों को सुनाया, उसी बात धीरे धीरे दुनियादारी में कहां खत्म हो गई पता ही नहीं चलता। मंजिल तक बहुत ही थोड़े लोग पहुंच पाते हैं। कहानी है ना कि एक घटना है तिब्बत की जब 10 लोग चलते हैं तब एक पहुंचता है।

एक बार ऐसा हुआ एक आश्रम था प्रधान आश्रम, वहां उसका एक दूसरा आश्रम भी बना। तो दूसरा आश्रम जब पूरा हो गया तो वहां के साधु ने खबर भेजी कि आप वहां से सन्यासी भेजें जोकि आश्रम चलाएं यहां पर आकर। तो इस प्रधान साधु ने 10 सन्यासियों को भेजा। तो यहां पर जो हजारों साधु थे उन्होंने कहा दस आप भेज रहे हैं,

इसकी तो कुछ समझ में नहीं आती बात। तो उसने कहा कि मैं बताऊंगा जब समय आएगा, जब वह पहुंच जाएंगे तब बताऊंगा। तो जब जैसे ही चले, चलते-चलते जब एक नगर पहुंचे। नगर का जब गेट खुला तो वहां पर सुबह का समय था तो जो व्यक्ति था वहां बहुत ही धनवान व्यक्ति था, नगर सेठ था वह बहुत गिड़गिड़ाने लगा कि हमें ज्योतिषी ने कहां कि जो भी पहला व्यक्ति मिलेगा, उसे उसे हमें अपनी बेटी का विवाह कर देना है और यह शर्त लगाई है ज्योतिषी ने नहीं तो अनर्थ ही हो जाएगा हमारा। तो आप तो 10 लोग हैं कोई तो एक मेरी इस विनय को मान लीजिए।

तो पहला ही व्यक्ति सोचा कि इतनी सुंदर लड़की है इतना धन है तो राजी हो गया। तो पहले व्यक्ति की शादी उसने तय कर ली और बाकी आगे चले। दूसरा नगर जब पहुंचे तो वहां का जब गेट खुला तो देखा कि प्रधानमंत्री आया हुआ था अपने राज्य उस राज्य का। उसने कहा हमारा जो पुरोहित है राज पुरोहित है उसकी मृत्यु हो गई है। और हमें एक नया राजपुरोहित चाहिए और आप लोगों में से एक व्यक्ति, लगता है आपमें से कोई इस कार्य को पूरा कर सकते हैं या आप में से कोई भी हमारी इस विनती को मान ले। तो किसी एक ने मान ली तो एक्चुअल पुरोहित था, सोचा कि मेरा तो या धर्म है, मुझे यह करना चाहिए, वहां वह पदअवस अम हो गया।

अब बचे बाकी अब आगे चले तो एक नगर में वहां पर द्वार खुला। तो वहां देखा कि वहां पर एक सभा चल रही है और वहां पर आस्तिक और नास्तिक, भगवान बुद्ध पर लोग कह रहे हैं कि भगवान बुद्ध के वचन में कोई सार नहीं है सब व्यर्थ है इस पर झगड़ा चल रहा है, आस्तिकता और नास्तिकता पर झगड़ा चल रहा है। तो उसने जैसे ही सुना मैं भगवान के वचनों का सार बता कर ही छोड़ूंगा, इस नास्तिक को आस्तिक बनाकर ही छोड़ूंगा, मैं प्रण लेता हूं। मैं बुध का भक्त हूं और वह वहां पर रुक गया। ऐसे कोई कोई कारण बने और सारे रुकते गए। अंत में जो एक व्यक्ति पहुंचा तो उस आश्रम के प्रधान ने खबर की जिससे कि मांगे थे सन्यासी को कहा कि आपने जो व्यक्ति भेजा था जो सन्यासी भेजा था वह सकुशल पहुंच गया है। तब उसने बताया अब वहां के मुख्य साधु ने अपने शिष्यों को बताया कि देखो 10 गए थे एक पहुंचा यह घटना इस कहानी द्वारा उसने बताई।

जीसस का एक वचन है कि परमात्मा जो है एक मछुआरे की तरह है, परमात्मा जो है मछुऐ के जाल की तरह अपना जाल फेंकता है और जैसे कि मछुआरा जाल नहीं फेकता है तो उसमें जो अच्छी-अच्छी मछलियां होती है वह लेकर बाकी सब जो खाने योग्य नहीं होती है उसे फेंक देता है वापस। तो वैसे ही परमात्मा अपना जाल उसका जाल क्या है यह संसार है, उसका पानी संसार है। ये जाल फेंकता है। यहाँ पर जो अच्छे-अच्छे काबिल लोग हैं उसे चुन लेना है। तो काबिल कौन है उसकी नजरों में? काबिल वह है जिसके भीतर प्यास है, जिसके भीतर प्रेम है, जिसके भीतर लगन है, जिसके भीतर निष्ठा है, जिसका संकल्प प्रगाढ़ है, जिसके भीतर धैर्य है, जिसके भीतर अनंत प्रतीक्षा है। वही काबिल है उसे वह चुन लेता है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा है कि 'बुराई से बुराई कभी खत्म नहीं होती। घृणा को तो केवल प्रेम द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है और यह एक अटूट सत्य है'?

बुराई से बुराई की तपन घटती नहीं है
कभी भी दुश्मनी से दुश्मनी मिटती नहीं है
मोहब्बत की फुहारों से मोहब्बत आती है वरना
अगन नफरत की नफरत से बुझती नहीं है॥

एक ऐतिहासिक घटना है, बहुत ही प्यारी घटना है कि एक वृद्ध राजा था और पड़ोसी से उसकी दुश्मनी, युद्ध छिड़ा हुआ था। उसी रात राज्य ने आक्रमण किया हुआ था युद्ध जारी था। तो पहले जमाने में क्या होता था कि जब युद्ध

की शुरुआत होती थी तब बिगुल बजता था और उसके बाद जब शाम हो जाती तो फिर बिगुल बजते और सब लोग अपने अपने टेरिटरी में, अपने खेमे में चले जाते थे। तो हुआ यह कि जैसे ही शाम होती बिगुल बजता, युद्ध विराम हो जाता, हर रोज यह राजा भीतर जाता और जो दुश्मन के खेमे में जाकर दुश्मन के सैनिकों को हेल्प करता, उनकी सेवा करता, उनके दुख दर्द सुनता, उनकी मरहम पट्टी करता हर रोज का यही काम था इस राजा का।

इस राजा का जवान वजीर था, उसने कहा आप क्या कर रहे हैं? आपको दुश्मन को खत्म करना है, हम लोग किस लिए निकले हैं आप भूल गए। हमें तो दुश्मन खत्म करना है। तो राजा ने कहा वही तो कर रहा हूं मैं, दुश्मनी खत्म कर रहा हूं। दुश्मन नहीं दुश्मनी खत्म कर रहा हूं। तो दुश्मनी खत्म हो गई तो दुश्मन कहां बचा, व्यक्ति दोस्त हो गया। तो वृद्ध राजा की होशियारी, यंग वजीर को समझ में आई जब उसने समझाया। याद रखना बुरे आदमी से दुश्मनी जब भी हम करेंगे हम भी बुरे हो जाएंगे। उसी की भाषा में बोलना पड़ेगा, उसी के ढंग से लड़ना पड़ेगा और वही व्यवहार भी करना पड़ेगा।

आप चोर से लड़ोगे तो उससे बड़ा चोर होना पड़ेगा, बेईमान से लड़ोगे तो उससे बड़ा बेईमान होना पड़ेगा, दुष्ट से लड़ोगे तो उससे बड़ा दुष्ट होना पड़ेगा, नहीं तो कैसे जीतोगे? जो तुम्हारे, जिस से लड़ रहे हो उससे ज्यादा तुम होगे तभी तो जीतोगे। तो बुराई से अगर लड़ोगे तो पता चला बुराई खत्म नहीं हुई, तुम ही बुरे हो गए। क्योंकि लड़ते लड़ते वह अपनाते अपनाते अपना वह जो ढंग है वैसे हो जाओगे।

इसीलिए कहावत है कि शत्रु तो बहुत ही सोच समझ कर चुनना। आपने जिस को शत्रु चुन लिया, आप बिल्कुल वैसे ही हो गए। याद रखना आप भी दोस्तों के स्मरण में इतना ना रहो जितना शत्रुओं के स्मरण में रहते हो। तो शत्रुता तो बहुत ही सोच समझ कर चुनना, नहीं तो उस से भी गए गुजरे हो जाओगे।

भगवान बुद्ध का कथन सौ प्रतिशत सच है कि 'बुराई से बुराई कभी खत्म नहीं होती। घृणा को तो केवल प्रेम द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है और यह एक अटूट सत्य है।'

भगवान बुद्ध के इस सुप्रसिद्ध वचन में किस युद्ध की ओर संकेत है- 'जीवन में हजारों लड़ाइयां जीतने से अच्छा है कि तुम स्वयं पर विजय प्राप्त कर लो। फिर जीत हमेशा तुम्हारी होगी इसे तुमसे कोई नहीं छीन सकता'?

बुद्ध आत्म-विजय की ओर संकेत कर रहे हैं। वे तो अहिंसा, दया, क्षमा, और करुणा की शिक्षा देते हैं। वे दूसरों से लड़ाई की बात नहीं कर सकते। भीतरी षटरिपुओं पर विजय प्राप्त हुई तो ही समझना कि जीवन-संग्राम में जीत मिली। खंडित हिस्से आपस में संघर्ष, गृह युद्ध।

सिकंदर जीत के दुनिया भी सब कुछ हार जाता है
मगर अंदर की बेचैनी से हो बीमार जाता है।
जो दिल की जंग को जीते वही असली सिकंदर है
वही भीतर की हर एक जंग से हो पार जाता है॥

सिकंदर और डायोजनीज की कथा ओशो ने कई बार हमें उसका जिक्र किया है उस घटना का, मुझे इस समय याद आती है वो कि सिकंदर जब दुनिया जीत के भारत आये तो उन्होंने सोचा लोगों से सुना बहुत तारीफ सुनी डायोजनीज नाम के एक फकीर की। एक डायोजनीज नाम का एक फकीर है जो कि ठीक महावीर की तरह दिगंबर रहता है और उसके आनंद उसकी मस्ती और बुलंदी का कोई ठिकाना नहीं, शहंशाह भी उसके सामने फीके पड़ जाए। यह सुनकर सिकंदर को लगा मेरे से महान कोई हो सकता है चलो जाकर देखा तो जाए। देखने के लिए कौतूहल वश गया वह और देख कर उसकी मस्ती डायोजनीज फकीर की मस्ती देखकर बिल्कुल ठिठक कर खड़ा रह गया, अवाक।

और डायोजनीज तो अपनी मस्ती में थे अपने कुत्ते के साथ सेक रहे थे धूप, तो उन्होंने कुछ कहा ही नहीं तो सिकंदर ने अपना परिचय दिया कि मैं महान सिकंदर हूं। तो डायोजनीज ने कहा कि ठीक है तो आप क्या करते हैं? तो बताया कि मैं महान सिकंदर हूं और मैं सारी दुनिया को जीतने का प्रण कर चुका हूं और आधी से ज्यादा जीत चुका हूं और अब आगे की बारी है। तो मैंने सोचा कि आपसे आशीर्वाद लेकर चलता हूं आपसे मिलकर चलता हूं। तो आपके लिए मैं क्या कर सकता हूं? डायोजनीज ने कहा नीचे से ऊपर तक सिकंदर को देखा, मेरे लिए क्या कर सकते हो! फिर कहां, एक काम करो यह जो तुम खड़े होना, मेरी धूप रोक रहे हो इसे छोड़ दो और याद रखना किसी की धूप कभी मत रोकना, किसी की धूप कभी मत रोकना। तुम आदमी खतरनाक दिखते हो। सिकंदर तो एकदम हक्का-बक्का रह गया। फिर बोला कि अब तुम दुनिया जीतने चले हो तो उसके बाद का क्या प्लान है? क्या करोगे दुनिया जीत कर? प्रश्न पूछा सिकंदर से, तो सिकंदर ने जवाब दिया आराम करूंगा ठीक आपकी तरह, ऐसी शांति और आनंद में विश्राम करूंगा। आपके ही पास आऊंगा यह गुर जानने के लिए सीखने के लिए शिक्षा ग्रहण करने।

तो डायोजनीज ने कहा विश्राम करोगे आनंद और मस्ती से मेरे पास रहोगे, तो अभी कौन सी देर हुई है अपने कुत्ते से बोला देखो हम पागल है हमने कुछ ही जीता नहीं और हम आराम कर रहे हैं, विश्राम में पड़े हुए हैं। यहां पर और यह देखो चतुर बुद्धिमान आदमी, ये सारी दुनिया जीत कर आएगा और उसके बाद विश्राम करेगा हमारे पास। हम तो ऐसे ही दीवाने हैं, अपने कुत्ते से उसने बोला डायगोनीज ने।

तब सिकंदर से डायगोनीज से कहा कि तुम्हें पता है तुमने समय जीत लिया है क्या? तुम्हें कल का पता है कि तुम लौट पाओगे मेरे पास? सिकंदर ने कहा कि मैंने चूंकि अब मैं लौट नहीं सकता मैंने जो प्रण किया है मेरी फौज फाटा सारी चीजें सारी योजनाएं चल पड़ी है। अब मैं बैक कैसे कर सकता हूं, बैक नहीं हो सकता अब। इसलिए मैं जल्दी से जल्दी आपके पास जरूर आऊंगा और आपके कदमों में ही दम छोडूंगा। बात लग गई थी सिकंदर को और ऐसा ही हुआ। जब वह दुनिया जीत कर लौट रहा था, रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई थी और अजब बात है कि एक ही दिन मृत्यु हुई इधर सिकंदर की उधर डायोजनीज की।

जब डायोजनीज और सिकंदर दोनों वैतरणी नदी पार कर रहे थे, तब जो डायोजनीज और सिकंदर पीछे मुड़कर देखा पहले सिकंदर था आगे आगे, पीछे मुड़कर देखा तो कहा कि थोड़ा सा शरमा गया क्योंकि दोनों ही दिगंबर थे अब, उसके तो डायोजनीज ने कहा कि तुम्हारी वेशभूषा कहां गई? सारा शानो शौकत कहां गया? तुम तो अब बिल्कुल हमारी तरह हो गए। तो इसने अपनी झेंप मिटाने के लिए कहता है कि आज का दिन विशेष दिन है आज के दिन एक फकीर और एक शहंशाह दोनों वैतरणी पार कर रहे हैं साथ साथ कितना शुभ दिन है ये। तो डायोजनीज ने कहा बिल्कुल ठीक कहते हो। लेकिन तुम जिसको फकीर कह रहे हो वो शहंशाह है और जो शहंशाह जिसको मान रहे हो वह फकीर है। तुमने जो भी जीता, जो भी शहंशाहियत जीती थी, जो भी लूट खसोट की थी, वह ला सके यहां कुछ भी। कहां गई तुम्हारी वह शानो शौकत? कुछ भी तो नहीं तुम तो ठीक मेरे जैसे हो।

और डायोजनीज ने कहा, हमने तो वही बचा लिया था जो बचता है और हमने तो जो छूट जाता है हमने तो उसे छोड़ ही दिया था वहां। डायोजनीज ने कहा हमने वही बचा लिया था जो बचता है अंत में, क्योंकि जो अंत में बचता है हमको लगा वही है जो बचाने जैसा है और वह छोड़ दिया जो छूट ही जाता है। तो जो चीज छूटनी है कहता है डायोजनीज, जो चीज छुटनी है जब छुड़ाए जाती है तो दुख देती है और जब छोड़ दी जाती है तो सुख देती है। और हमने छोड़ दी और हम आनंद में तब भी थे और हम आनंद में अब भी है। आज तुम लूजर हो और हम विनर है और हम तब भी थे और आज भी है।

असली जीत जो है जिसे मौत ना छीन सके वह असली जीत है। तो मृत्यु कौन सी चीज को नहीं छिन सकती है, उसे जीतना है। असली जीत है, अपने अंतरतम आत्म विजय। बोध्द शब्दावली में एक शब्द है अरहत, जैन शब्दावली

में एक शब्द है अरिहंत। अरहंत और इसका अर्थ ही है कि जिसने शत्रुओं का नाश कर दिया। जिन से जैन शब्द बना है और इसी विजय के कारण वर्तमान जो है महावीर का है, क्योंकि उन्होंने आप मुझे प्राप्त की अब अपनी षटरुपोओ को जीता। सच पूछो तो हमारा दुश्मन है कहां, दुश्मन तो भीतर है बाहर जो दुश्मन है जिससे जिससे हम जीत भी सकते हैं जीत भी जाते हैं। याद रखना जिससे हम हरा देते हैं वह दुश्मन हो जाता है वह सदैव षड्यंत्र करता है।

हमें भय और चिंता हमेशा ही पकड़ी रहेगी, हार और जीत का सिलसिला चलता रहेगा। एक बार जीतेंगे आदमी जीतेगा फिर हार आएगी, क्योंकि जब भी कोई जीता है देखो ना जिसको फूल माला पहनाई जाती है उसका नाम हार रखा जाता है। याद दिलाने के लिए यह प्रतीक है कि जीत आई है तो इसके बाद हार आएगी हार आई है तो इसके बाद जीत आएगी। यह जो रोटेशन है बस चलता ही रहता है। वास्तविक विजय कब है जब हार जीत के हम पार चले जाएंगे, वास्तविक विजय षटरुपोओ को जीतना है। अपने भीतर के जो शत्रु है ना काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष इस को जीतना है। और कैसे जीतना है, इससे लड़ाई नहीं करनी है। फिर हम गलती में पड़ जाएंगे ज्ञान ही विजय है, जानना ही जीत है, और ना जानना हार है। तो जो है भीतर अपने स्वरूप तक अपने को जानने के बाद ही यह विजय प्राप्त होती है। हार जीत के पार, अपने भीतर के साम्राज्य को जो पा लेता है वही असली सिकंदर है, असली विजेता है।

भगवान बुद्ध की क्रांति के बाद ओशो की आध्यात्मिक क्रांति किस प्रकार भिन्न है?

इस भिन्नता को समझने के लिए निवेदन है कि निम्नांकित प्रश्नोत्तर पढ़िए--

'फिर पत्तों की पाजेब बजी' के 11वें प्रवचन में किसी ने प्रश्न पूछाः गौतम बुद्ध के साथ धर्म ने एक बहुत बड़ी छलांग, 'क्वांटम लीप' ली; परमात्मा निरर्थक हो गया, ध्यान सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गया। अब बुद्ध के पश्चात, पच्चीस सदियों के बाद, धर्म पुनः एक बार आपकी उपस्थिति में वैसी ही छलांग ले रहा है, और धार्मिकता बन रहा है। इस घटना को समझाने की अनुकंपा करें।

ओशो ने उत्तर दिया- धर्म की छलांग, यह 'क्वांटम लीप' गौतम बुद्ध से भी पच्चीस सदियों पहले एक बार लगी थी, और उसका श्रेय आदिनाथ को मिलता है। उन्होंने पहली बार अनीश्वरवादी धर्म की देशना दी। यह एक बहुत बड़ी क्रांति थी क्योंकि पूरे जगत में इसकी कभी कल्पना नहीं की गई थी कि ईश्वर के बिना भी धर्म हो सकता है। ईश्वर को धर्म का केंद्र बनाने से मनुष्य सिर्फ एक परिधि हो जाता है। ईश्वर को यदि इस सृष्टि का स्रष्टा माना जाए तो मनुष्य सिर्फ एक कठपुतली हो जाता है। आदिनाथ पांच हजार साल पहले इस बात की कल्पना कर सके, तो निश्चित ही, वह बहुत गहरे ध्यानी और चिंतक रहे होंगे। और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे होंगे कि ईश्वर की धारणा बनायी तो इस संसार में कोई अर्थ नहीं होगा।

आदिनाथ ने ईश्वर को तो विदा कर दिया, लेकिन उसकी जगह उन्होंने तप, व्रत, कायाक्लेश, उपवास, नग्नता, दिन में सिर्फ एक बार भोजन करना, रात में पानी नहीं पीना, खाना नहीं खाना, केवल गिनी-चुनी चीजें खाना- इन बातों को प्रचलित किया। तुमने ईश्वर को विदा कर दिया, अब तुम क्रिया-कांड नहीं कर सकोगे, पूजा नहीं कर सकोगे, प्रार्थना नहीं कर सकोगे। उस रिक्त स्थान को भरना होगा। उन्होंने उस रिक्त स्थान को तपों से भर दिया। क्योंकि मनुष्य उसके धर्म का केंद्र हो गया। मनुष्य को स्वयं को विशुद्ध करना है।

आदिनाथ ने अनीश्वरवादी धर्म निर्मित किया। बुद्ध ने ध्यानपूर्ण धर्म को जन्म दिया। शरीर को सताने का सवाल नहीं है। सिवाय यह है कि और मौन कैसे हों, और तनाव-रहित, और शांत कैसे हों। यह एक अंतर्यात्रा हैः स्वयं की चेतना के केंद्र पर पहुंचना। और स्वयं की चेतना का केंद्र ही पूरे अस्तित्व का केंद्र है। पच्चीस सदियां फिर बीत गईं;

और जिस तरह आदिनाथ की अनीश्वरवादी धर्म की क्रांतिकारी धारणा तपों के और कायाक्लेश के रेगिस्तान में सूख गई, उसी तरह बुद्ध की ध्यान की धारणा भी... क्योंकि वह आंतरिक है, कोई और इसे देख नहीं सकता।

जैसे ही बुद्ध का निर्वाण हुआ, और ये लोग मर गए तो वही संगठन, जिसे ध्यान में लोगों का मार्गदर्शन करें, उन्होंने बुद्ध के आसपास क्रिया-काण्ड खड़े करने शुरू किये। बुद्ध ने फिर ईश्वर की जगह ले ली। जिसे आदिनाथ ने विदा कर दिया था, जिसके अस्तित्व को बुद्ध ने कभी स्वीकार नहीं किया था... लेकिन यह पुरोहितों की जमात ईश्वर के बिना नहीं की जा सकती।

हमने देख लिया कि आदिनाथ की क्रांतिकारी धारणा का क्या हुआ- ईश्वरविहीन धर्म। हमने देख लिया कि बुद्ध का क्या हुआ- ईश्वरविहीन संगठित धर्म। अब मेरा प्रयास हैः जिस तरह उन्होंने ईश्वर को विदा किया जाए। सिर्फ ध्यान शेष रह जाए, ताकि उसका किसी भांति विस्मरण न हो। धर्म से मेरा मतलब है, संगठित सिद्धांत, मत, क्रियाकांड, पुरोहिती। *और पहली बार, मैं चाहता हूं, धर्म नितांत वैयक्तिक हो। क्योंकि सभी संगठित धर्मों ने फिर वह ईश्वरवादी हों या अनीश्वरवादी हों, मानवता को भटका दिया है। और उसका एकमात्र कारण थाः संगठन। क्योंकि संगठन के अपने ढंग होते हैं, जो ध्यान के विपरीत जाते हैं। वस्तुतः संगठन एक राजनीतिक घटना है। यह धार्मिक नहीं है।*

शायद उन्हें इसका अहसास नहीं हो सका कि जब तक घटनाएं नहीं घटतीं हैं तब तक वे तुम्हें पूरी ख्याल में नहीं आती हैं कि कोई संगठन नहीं होना चाहिए; कि पुरोहितों का वर्ग नहीं होना चाहिए; कि जिस तरह ईश्वर विदा हुआ है उसी तरह धर्म भी विदा होना चाहिए। लेकिन उन्हें क्षमा की जा सकती है। क्योंकि उन्होंने उस संबंध में सोचा नहीं था, और अतीत का कोई अनुभव नहीं था, जिससे इसे देखने में उन्हें मदद मिलती। वह उनके बाद आया। फिर यह बात साफ हो गई कि ईश्वर इतना महत्वपूर्ण नहीं है। असली समस्या है पुरोहित, और ईश्वर पुरोहित का आविष्कार है। जब तक तुम पुरोहित से मुक्त नहीं होते तब तक तुम ईश्वर से मुक्त नहीं होओगे। और पुरोहित क्रियाकांडों के नए उपाय खोज लेगा। वह नए ईश्वर पैदा करेगा। मेरा प्रयास यह है कि तुम्हें ध्यान के साथ अकेला छोड़ दिया जाए और तुम्हारे अस्तित्व के बीच कोई मध्यस्थ न हो।

भगवान बुद्ध के इस प्रसिद्ध वचन 'अप्प दीपो भव' से क्या ओशो सहमत हैं?

जी हां। भगवान बुद्ध के इस प्रसिद्ध वचन 'अप्प दीपो भव' से ओशो समग्रतः सहमत हैं। वे कहते हैं कि गौतम बुद्ध की वाणी अनूठी है। और विशेषकर उन्हें, जो सोच-विचार, चिंतन-मनन, विमर्श के आदी हैं। हृदय से भरे हुए लोग सुगमता से परमात्मा की तरफ चले जाते हैं। लेकिन हृदय से भरे हुए लोग कहां हैं? और हृदय से भरने का कोई उपाय भी तो नहीं है। हो तो हो, न हो तो न हो। ऐसी आकस्मिक, नैसर्गिक बात पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। बुद्ध ने उनको चेताया जिनको चेताना सर्वाधिक कठिन है--विचार से भरे लोग, बुद्धिवादी, चिंतन-मननशील। प्रेम और भाव से भरे लोग तो परमात्मा की तरफ सरलता से झुक जाते हैं; उन्हें झुकाना नहीं पड़ता। *उनसे कोई न भी कहे, तो भी वे पहुंच जाते हैं; उन्हें पहुंचाना नहीं पड़ता। लेकिन वे तो बहुत थोड़े हैं, और उनकी संख्या रोज थोड़ी होती गयी है। उंगलियों पर गिने जा सकें, ऐसे लोग हैं।*

मनुष्य का विकास मस्तिष्क की तरफ हुआ है। मनुष्य मस्तिष्क से भरा है। इसलिए जहां जीसस हार जाएं, जहां कृष्ण की पकड़ न बैठे, वहां भी बुद्ध नहीं हारते हैं; वहां भी बुद्ध प्राणों के अंतरतम में पहुंच जाते हैं।

बुद्ध का धर्म बुद्धि का धर्म कहा गया है। बुद्धि पर उसका आदि तो है, अंत नहीं। शुरुआत बुद्धि से है। प्रारंभ बुद्धि से है। क्योंकि मनुष्य वहां खड़ा है। लेकिन अंत, अंत उसका बुद्धि में नहीं है। अंत तो परम अतिक्रमण है, जहां सब

विचार खो जाते हैं, सब बुद्धिमत्ता विसर्जित हो जाती है; जहां केवल साक्षी, मात्र साक्षी शेष रह जाता है। लेकिन बुद्ध का प्रभाव उन लोगों में तत्क्षण अनुभव होता है जो सोच-विचार में कुशल हैं।

बुद्ध के साथ मनुष्य-जाति का एक नया अध्याय शुरू हुआ। पच्चीस सौ वर्ष पहले बुद्ध ने वह कहा जो आज भी सार्थक मालूम पड़ेगा, और जो आने वाली सदियों तक सार्थक रहेगा। बुद्ध ने विश्लेषण दिया, एनालिसिस दी। और जैसा सूक्ष्म विश्लेषण उन्होंने किया, कभी किसी ने न किया था, और फिर दुबारा कोई न कर पाया। उन्होंने जीवन की समस्या के उत्तर शास्त्र से नहीं दिए, विश्लेषण की प्रक्रिया से दिए। बुद्ध धर्म के पहले वैज्ञानिक हैं। उनके साथ श्रद्धा और आस्था की जरूरत नहीं है। उनके साथ तो समझ पर्याप्त है। अगर तुम समझने को राजी हो, तो तुम बुद्ध की नौका में सवार हो जाओगे। अगर श्रद्धा भी आएगी, तो समझ की छाया होगी। लेकिन समझ के पहले श्रद्धा की मांग बुद्ध की नहीं है। बुद्ध यह नहीं कहते कि जो मैं कहता हूं, भरोसा कर लो। बुद्ध कहते हैं, सोचो, विचारो, विश्लेषण करो; खोजो, पाओ अपने अनुभव से, तो भरोसा कर लेना।

दुनिया के सारे धर्मों ने भरोसे को पहले रखा है, सिर्फ बुद्ध को छोड़कर। दुनिया के सारे धर्मों में श्रद्धा प्राथमिक है, फिर ही कदम उठेगा। बुद्ध ने कहा, अनुभव प्राथमिक है, श्रद्धा आनुसांगिक है। अनुभव होगा, तो श्रद्धा होगी। अनुभव होगा, तो आस्था होगी। इसलिए बुद्ध कहते हैं, आस्था की कोई जरूरत नहीं है; अनुभव के साथ अपने से आ जाएगी, तुम्हें लानी नहीं है। और तुम्हारी लायी हुई आस्था का मूल्य भी क्या हो सकता है? तुम्हारी लायी आस्था के पीछे भी छिपे होंगे तुम्हारे संदेह। तुम आरोपित भी कर लोगे विश्वास को, तो भी विश्वास के पीछे अविश्वास खड़ा होगा। तुम कितनी ही दृढ़ता से भरोसा करना चाहो, लेकिन तुम्हारी दृढ़ता कंपती रहेगी और तुम जानते रहोगे कि जो तुम्हारे अनुभव में नहीं उतरा है, उसे तुम चाहो भी तो भी कैसे मान सकते हो? मान भी लो, तो भी कैसे मान सकते हो? तुम्हारा ईश्वर कोरा शब्दजाल होगा, जब तक अनुभव की किरण न उतरी हो। तुम्हारे मोक्ष की धारणा मात्र शाब्दिक होगी, जब तक मुक्ति का थोड़ा स्वाद तुम्हें न लगा हो।

बुद्ध ने कहाः मुझ पर भरोसा मत करना। मैं जो कहता हूं, उस पर इसलिए भरोसा मत करना कि मैं कहता हूं। सोचना, विचारना, जीना। तुम्हारे अनुभव की कसौटी पर सही हो जाए, तो ही सही है। मेरे कहने से क्या सही होगा! बुद्ध के अंतिम वचन हैंः अप्प दीपो भव। अपने दीए खुद बनना। और तुम्हारी रोशनी में तुम्हें जो दिखायी पड़ेगा, फिर तुम करोगे भी क्या--आस्था न करोगे तो करोगे क्या? आस्था सहज होगी। उसकी बात ही उठानी व्यर्थ है। बुद्ध का धर्म विश्लेषण का धर्म है। लेकिन विश्लेषण से शुरू होता है, समाप्त नहीं होता वहां। समाप्त तो परम संश्लेषण पर होता है। बुद्ध का धर्म संदेह का धर्म है। लेकिन संदेह से यात्रा शुरू होती है, समाप्त नहीं होती। समाप्त तो परम श्रद्धा पर होती है।

इसलिए बुद्ध को समझने में बड़ी भूल हुई। क्योंकि बुद्ध संदेह की भाषा बोलते हैं। तो लोगों ने समझा, यह संदेहवादी है। हिंदू तक न समझ पाए, जो जमीन पर सबसे ज्यादा पुरानी कौम है। बुद्ध निश्चित ही बड़े अनूठे रहे होंगे, तभी तो हिंदू तक समझने से चूक गए। हिंदुओं तक को यह आदमी खतरनाक लगा, घबड़ाने वाला लगा। हिंदुओं को भी लगा कि यह तो सारे आधार गिरा देगा धर्म के। और यही आदमी है, जिसने धर्म के आधार पहली दफा ढंग से रखे। श्रद्धा पर भी कोई आधार रखा जा सकता है! अनुभव पर ही आधार रखा जा सकता है। अनुभव की छाया की तरह श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा अनुभव की सुगंध है। और अनुभव के बिना श्रद्धा अंधी है। और जिस श्रद्धा के पास आंख न हों, उससे तुम सत्य तक पहुंच पाओगे?

बुद्ध ने बड़ा दुस्साहस किया। बुद्ध जैसे व्यक्ति पर भरोसा करना एकदम सुगम होता है। उसके उठने-बैठने में प्रामाणिकता होती है। उसके शब्द-शब्द में वजन होता है। उसके होने का पूरा ढंग स्वयंसिद्ध होता है। उस पर श्रद्धा आसान हो जाती है। लेकिन बुद्ध ने कहा, तुम मुझे अपनी बैसाखी मत बनाना। तुम अगर लंगड़े हो, और मेरी बैसाखी

के सहारे चल लिए--कितनी दूर चलोगे? मंजिल तक न पहुंच पाओगे। आज मैं साथ हूं, कल मैं साथ न रहूंगा, फिर तुम्हें अपने ही पैरों पर चलना है। मेरी रोशनी से मत चलना, क्योंकि थोड़ी देर को संग-साथ हो गया है अंधेरे जंगल में। तुम मेरी रोशनी में थोड़ी देर रोशन हो लोगे; फिर हमारे रास्ते अलग हो जाएंगे। मेरी रोशनी मेरे साथ होगी, तुम्हारा अंधेरा तुम्हारे साथ होगा। अपनी रोशनी पैदा करो। अप्प दीपो भव!

ओशो के इस वचन का तात्पर्य क्या है- 'गौतम बुद्ध असहज के पक्षपाती नहीं, सहज के उपदेष्टा हैं'?

गौतम बुद्ध असहज के पक्षपाती नहीं, सहज के उपदेष्टा हैं। ओशो कहते हैं--

गौतम बुद्ध कहते हैं, कठिन के ही कारण आकर्षित मत होओ। क्योंकि कठिन में अहंकार का लगाव है। इसे तुमने देखा कभी? जितनी कठिन बात हो, लोग करने को उसमें उतने ही उत्सुक होते हैं। क्योंकि कठिन बात में अहंकार को रस आता है, मजा आता है--करके दिखा दूं। अब जैसे पूना की पहाड़ी पर कोई चढ़ जाए, तो इसमें कुछ मजा नहीं है, एवरेस्ट पर चढ़ जाऊं तो कुछ बात है। पूना की पहाड़ी पर चढ़कर कौन तुम्हारी फिकर करेगा, तुम वहां लगाए रहो झंडा, खड़े रहो चढ़कर! न अखबार खबर छापेंगे, न कोई वहां तुम्हारा चित्र लेने आएगा। तुम बड़े हैरान होओगे कि फिर यह हिलेरी पर और तेनसिंग पर इतना शोरगुल क्यों मचाया गया! आखिर इन ने भी कौन सी बड़ी बात की थी, जाकर हिमालय पर झंडा गाड़ दिया था, मैंने भी झंडा गाड़ दिया! लेकिन तुम्हारी पहाड़ी छोटी है। इस पर कोई भी चढ़ सकता है। जिस पहाड़ी पर कोई भी चढ़ सकता है, उसमें अहंकार को तृप्ति का उपाय नहीं है।

तो बुद्ध ने कहा कि अहंकार अक्सर ही कठिन में और दुर्गम में उत्सुक होता है। इसलिए कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि जो सहज और सुगम है, जो हाथ के पास है, वह चूक जाता है और दूर के तारों पर हम चलते जाते हैं। देखते हैं, आदमी चांद पर पहुंच गया। अभी अपने पर नहीं पहुंचा! तुमने कभी देखा, सोचा इस पर? चांद पर पहुंचना तकनीक की अद्‌भुत विजय है। गणित की अद्‌भुत विजय है। विज्ञान की अद्‌भुत विजय है। जो आदमी चांद पर पहुंच गया, यह अभी छोटी-छोटी चीजें करने में सफल नहीं हो पाया है। अभी एक ऐसा फाउंटेनपेन भी नहीं बना पाया जो लीकता न हो। और चांद पर पहुंच गए! छोटी सी बात भी, अभी सर्दी-जुखाम का इलाज नहीं खोज पाए, चांद पर पहुंच गए! अब ऐसे फाउंटेनपेन को बनाने में उत्सुक भी कौन है जो लीके न! छोटी-मोटी बात है, इसमें रखा क्या है!

फाउंटेनपेन सदा लीकेंगे। कोई आशा नहीं दिखती कि कभी ऐसे फाउंटेनपेन बनेंगे जो लीकें न। और सर्दी-जुखाम सदा रहेगी, इससे छुटकारे का उपाय नहीं है। क्योंकि चिकित्सक कैंसर में उत्सुक हैं, सर्दी-जुखाम में नहीं। बड़ी चीज अहंकार को चुनौती बनती है। आदमी अपने भीतर नहीं पहुंचा जो निकटतम है और चांद पर पहुंच गया। मंगल पर भी पहुंचेगा, किसी दिन और तारों पर भी पहुंचेगा, बस, अपने को छोड़कर और सब जगह पहुंचेगा।

तो बुद्ध असहजवादी नहीं हैं। बुद्ध कहते हैं, सहज पर ध्यान दो। जो सरल है, सुगम है, उसको जीओ। जो सुगम है, वही साधना है। इसको खयाल में लेना। तो बुद्ध ने जीवनचर्या को अत्यंत सुगम बनाने के लिए उपदेश दिया है। छोटे बच्चे की भांति सरल जीओ। साधु होने का अर्थ बहुत कठिन और जटिल हो जाना नहीं, कि सिर के बल खड़े हैं, कि खड़े हैं तो खड़े ही हैं, बैठते नहीं, कि भूखों मर रहे हैं, कि लंबे उपवास कर रहे हैं, कि कांटों की शय्या बिछाकर उस पर लेट गए हैं, कि धूप में खड़े हैं, कि शीत में खड़े हैं, कि नग्न खड़े हैं। बुद्ध ने इन सारी बातों पर कहा कि ये सब अहंकार की ही दौड़ हैं। जीवन तो सुगम है, सरल है। सत्य सुगम और सरल ही होगा। तुम नैसर्गिक बनो और अहंकार के आकर्षणों में मत उलझो। ओशो की तरह महावीर और बुद्ध ने, कृष्ण और ग्राइस्ट ने क्यों नहीं समझाया कि हम एक ही धर्म की बात करते हैं, भेद सिर्फ पद्धति और शब्दावली का है? तब उनके अनुयायियों में इतनी शत्रुता नहीं बढ़ती।

ओशो के इस वचन का तात्पर्य क्या है- 'गौतम बुद्ध नियमवादी नहीं हैं, बोधवादी हैं'?

गौतम बुद्ध नियमवादी नहीं हैं, बोधवादी हैं। ओशो कहते हैं--

अगर बुद्ध से पूछो, क्या अच्छा है, क्या बुरा है, तो बुद्ध उत्तर नहीं देते। बुद्ध यह नहीं कहते कि यह काम बुरा है और यह काम अच्छा है। बुद्ध कहते हैं, जो बोधपूर्वक किया जाए, वह अच्छा; जो बोधहीनता से किया जाए, बुरा। इस फर्क को खयाल में लेना। बुद्ध यह नहीं कहते कि हर काम हर स्थिति में भला हो सकता है। या कोई काम हर स्थिति में बुरा हो सकता है। कभी कोई बात पुण्य हो सकती है, और कभी कोई बात पाप हो सकती है--वही बात पाप हो सकती है, भिन्न परिस्थिति में वही बात पाप हो सकती है। इसलिए पाप और पुण्य कर्मों के ऊपर लगे हुए लेबिल नहीं हैं। अभी जो तुमने किया, पुण्य है; और सांझ को दोहराओ तो शायद पाप हो जाए। भिन्न परिस्थिति।

तो फिर हमारे पास शाश्वत आधार क्या होगा निर्णय का? बुद्ध ने एक नया आधार दिया। बुद्ध ने आधार दिया--बोध, जागरूकता। इसे खयाल में लेना। जो मनुष्य जागरूकतापूर्वक कर पाए, जो भी जागरूकता में ही किया जा सके, वही पुण्य है। और जो बात केवल मूर्च्छा में ही की जा सके, वही पाप है। जैसे, तुम पूछो, क्रोध पाप है या पुण्य? तो बुद्ध कहते हैं, अगर तुम क्रोध जागरूकतापूर्वक कर सको, तो पुण्य है। अगर क्रोध तुम मूर्च्छित होकर ही कर सको, तो पाप है। अब फर्क समझना। इसका मतलब यह हुआ कि हर क्रोध पाप नहीं होता और हर क्रोध पुण्य नहीं होता। कभी मां जब अपने बेटे पर क्रोध करती है, तो जरूरी नहीं है कि पाप हो। शायद पुण्य भी हो, पुण्य हो सकता है। शायद बिना क्रोध के बेटा भटक जाता। लेकिन इतना ही बुद्ध का कहना है, होशपूर्वक किया जाए।

मैंने एक झेन कहानी सुनी है। एक समुराई, एक क्षत्रिय के गुरु को किसी ने मार दिया। और जापान में ऐसी व्यवस्था है, अगर किसी का गुरु मार डाला जाए, तो शिष्य का यह कर्तव्य है कि बदला ले। और जब तक वह मारने वाले को न मार दे, तब तक चैन न ले। ये समुराई तो बड़े भयानक योद्धा होते हैं। गुरु को किसी ने मार डाला, तो उसका जो शिष्य था, वह तो सब कुछ छोड़कर बस इसी में लग गया। दो साल बाद उसका पीछा करते-करते एक जंगल में, एक गुफा में उसको पकड़ लिया। बस उसकी छाती में छुरा भोंकने को था ही कि उस आदमी ने उस समुराई के ऊपर थूक दिया। जैसे ही उसने थूका, उसने छुरा वापस रख लिया अपनी म्यान में और वापस गुफा के बाहर निकल आया।

उस आदमी ने कहा, क्यों भाई, क्या हो गया? दो साल से मेरे पीछे पड़े हो, बमुश्किल तुम मुझे खोज पाए, मैं जंगल-जंगल भागता रहा, आज तुम्हें मिल गया, आज क्या बात हो गयी कि छुरा निकाला हुआ वापस रख लिया?

उसने कहा कि मुझे क्रोध आ गया। तुमने थूक दिया, मुझे क्रोध आ गया। मेरे गुरु का उपदेश था, मारो भी अगर किसी को, तो मूर्च्छा में मत मारना। तो मारने में भी कोई पाप नहीं है। लेकिन तुमने जो थूक दिया, दो साल तक मैंने होश रखा--यह तो सिर्फ एक व्यवस्था की बात थी कि गुरु को मेरे तुमने मारा तो मैं तुम्हें मार रहा था, मेरा इसमें कुछ वैयक्तिक लेना-देना नहीं था--लेकिन तुमने थूक क्या दिया मुझ पर, मैं भूल ही गया गुरु को और मेरे मन में भाव उठा कि मार डालूं इस आदमी को, इसने मेरे ऊपर थूका! मैं बीच में आ गया, मूर्च्छा आ गयी। अहंकार बीच में आ गया, मूर्च्छा आ गयी। इसलिए अब जाता हूं। अब फिर जब यह मूर्च्छा हट जाएगी तब सोचूंगा। लेकिन मूर्च्छा में कुछ किया नहीं जा सकता।

बुद्ध ने कहा है, जो तुम मूर्च्छा में करो, वही पाप; जो तुम जागरूकता में करो, वही पुण्य है। यह पाप और पुण्य की बड़ी नयी व्यवस्था थी। और इसमें व्यक्ति को परम स्वतंत्रता है। कोई दूसरा तय नहीं कर सकता कि क्या पाप है, क्या पुण्य है। तुमको ही तय करना है। बुद्ध ने व्यक्ति को परम गरिमा दी।

ओशो के इस वचन का तात्पर्य क्या है- 'गौतम बुद्ध विधिवादी नहीं, मानवीय हैं'?

गौतम बुद्ध विधिवादी नहीं, मानवीय हैं। ओशो कहते हैं--

एक तो विधिवादी होता है, जैसे मनु। सिद्धांत महत्वपूर्ण हैं, मनुष्य महत्वपूर्ण नहीं है। ऐसा लगता है मनु में, जैसे मनुष्य सिद्धांत के लिए बना है। मनुष्य की आहुति चढ़ायी जा सकती है सिद्धांत के लिए, लेकिन सिद्धांत में फेर-बदल नहीं की जा सकती। बुद्ध अति मानवीय हैं, ह्यूमनिस्ट। मानववादी हैं। वे कहते हैं, सिद्धांत का उपयोग है मनुष्य की सेवा में तत्पर हो जाना। सिद्धांत मनुष्य के लिए है, मनुष्य सिद्धांत के लिए नहीं। इसलिए बुद्ध के वक्तव्यों में बड़े विरोधाभास हैं। क्योंकि बुद्ध एक-एक व्यक्ति की मनुष्यता को इतना मूल्य देते, इतना चरम मूल्य देते हैं कि अगर उन्हें लगता है इस आदमी को इस सिद्धांत से ठीक नहीं पड़ेगा, तो वे सिद्धांत बदल देते हैं। अगर उन्हें लगता है कि थोड़े से सिद्धांत में फर्क करने से इस आदमी को लाभ होगा, तो उन्हें फर्क करने में जरा भी झिझक नहीं होती। लेकिन मौलिक रूप से ध्यान उनका व्यक्ति पर है, मनुष्य पर है। मनुष्य परम है। मनुष्य चरम है। मनुष्य मापदंड है। सब चीजें मनुष्य पर कसी जानीं चाहिए।

इसलिए बुद्ध वर्ण-व्यवस्था को न मान सके। इसलिए बुद्ध आश्रम-व्यवस्था को भी न मान सके। क्योंकि ये जड़ सिद्धांत हैं। बुद्ध ने कहा, ब्राह्मण वही जो ब्रह्म को जाने। ब्राह्मण-घर में पैदा होने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। और शूद्र वही जो ब्रह्म को न जाने। शूद्र-घर में पैदा होने से कोई शूद्र नहीं होता। तो अनेक ब्राह्मण शूद्र हो गए, बुद्ध के हिसाब से, और अनेक शूद्र ब्राह्मण हो गए। सब अस्तव्यस्त हो गया। मनु के पूरे शास्त्र को बुद्ध ने उखाड़ फेंका।

हिंदू अब तक भी बुद्ध से नाराजगी भूले नहीं हैं। वर्ण-व्यवस्था को इस बुरी तरह बुद्ध ने तोड़ा। यह कुछ आकस्मिक बात नहीं थी कि डाक्टर अंबेडकर ने ढाई हजार साल बाद फिर शूद्रों को बौद्ध होने का निमंत्रण दिया। इसके पीछे कारण है। अंबेडकर ने बहुत बातें सोची थीं। पहले उसने सोचा कि ईसाई हो जाएं, क्योंकि हिंदुओं ने तो सता डाला है, तो ईसाई हो जाएं। फिर सोचा कि मुसलमान हो जाएं। लेकिन यह कोई बात जमी नहीं, क्योंकि मुसलमानों में भी वही उपद्रव है। वर्ण के नाम से न होगा तो शिया-सुन्नी का है।

अंततः अंबेडकर की दृष्टि बुद्ध पर पड़ी और तब बात जंच गयी अंबेडकर को कि शूद्र को सिवाय बुद्ध के साथ और कोई उपाय नहीं है। क्योंकि शूद्र के लिए भी अपने सिद्धांत बदलने को अगर कोई आदमी राजी हो सकता है तो वह गौतम बुद्ध हैं--और कोई राजी नहीं हो सकता--जिसके जीवन में सिद्धांत का मूल्य ही नहीं, मनुष्य का चरम मूल्य है। यह आकस्मिक नहीं है कि अंबेडकर बौद्ध हुए। यह पच्चीस सौ साल के बाद शूद्रों का फिर बौद्धत्व की तरफ जाना, या बौद्धत्व के मार्ग की तरफ जाना, बौद्ध होने की आकांक्षा, बड़ी सूचक है। इससे बुद्ध के संबंध में खबर मिलती है। बुद्ध ने वर्ण की व्यवस्था तोड़ दी और आश्रम की व्यवस्था भी तोड़ दी। जवान, युवकों को संन्यास दे दिया। हिंदू नाराज हुए। संन्यस्त तो आदमी होता है आखिरी अवस्था में, मरने के करीब। अगर बचा रहा, तो पचहत्तर साल के बाद उसे संन्यस्त होना चाहिए। तो पहले तो पचहत्तर साल तक लोग बचते नहीं। अगर बच गए, तो पचहत्तर साल के बाद ऊर्जा नहीं बचती जीवन में। तो हिंदुओं का संन्यास एक तरह का मुर्दा संन्यास है, जो आखिरी घड़ी में कर लेना है। मगर इसका जीवन से कोई बहुत गहरा संबंध नहीं है।

बुद्ध ने युवकों को संन्यास दे दिया, बच्चों को संन्यास दे दिया और कहा कि यह बात मूल्यवान नहीं है, लकीर के फकीर होकर चलने से कुछ भी न चलेगा। अगर किसी व्यक्ति को युवावस्था में भी परमात्मा को खोजने की, सत्य को खोजने की, जीवन के यथार्थ को खोजने की प्रबल आकांक्षा जगी है, तो मनु महाराज का नियम मानकर रुकने की कोई जरूरत नहीं है। वह अपनी आकांक्षा को सुने, वह अपनी आकांक्षा से जाए। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आकांक्षा को सुने। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आकांक्षा से जीए। उन्होंने सब सिद्धांत एक अर्थ में गौण कर दिए, मनुष्य प्रमुख हो गया।

तो वे सैद्धांतिक नहीं हैं, विधिवादी नहीं हैं। लीगल नहीं है उनकी पकड़, उनकी पकड़ मानवीय है। कानून इतना मूल्यवान नहीं है, जितना मनुष्य मूल्यवान है। और हम कानून बनाते ही इसीलिए हैं कि मनुष्य के काम आए। मनुष्य कानून के काम आने के लिए नहीं है। इसलिए जब जरूरत हो, कानून बदला जा सकता है। जब मनुष्य के हित में हो, ठीक है, जब अहित में हो जाए तो तोड़ा जा सकता है। जो-जो मनुष्य के अहित में हो जाए, तोड़ देना है। कोई कानून शाश्वत नहीं है, सब कानून उपयोग के लिए हैं।

ओशो के इस वचन का तात्पर्य क्या है- 'गौतम बुद्ध वायुवीय, हवाई, एब्सट्रेक्ट नहीं, अत्यंत व्यावहारिक हैं'?

गौतम बुद्ध वायवी, हवाई, एब्सट्रेक्ट नहीं, अत्यंत व्यावहारिक हैं। ओशो कहते हैं--

ऊंचे से ऊंची छलांग ली है उन्होंने, लेकिन पृथ्वी को कभी नहीं छोड़ा। जड़ें जमीन में जमाए रखीं। वह सिर्फ हवा में ही पंख नहीं मारते रहे। एक बहुत प्राचीन कथा है कि ब्रह्मा ने जब सृष्टि बनायी और सब चीजें बनायीं, तभी उसने यथार्थ और स्वप्न भी बनाया। बनते ही झगड़ा शुरू हो गया। यथार्थ और स्वप्न का झगड़ा तो प्राचीन है। पहले दिन ही झगड़ा शुरू हो गया। यथार्थ ने कहा, मैं श्रेष्ठ हूं; स्वप्न ने कहा, मैं श्रेष्ठ हूं, तुझमें रखा क्या है! झगड़ा यहां तक बढ़ गया कि कौन महत्वपूर्ण है दोनों में कि दोनों झगड़ते हुए ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा हंसे और उन्होंने कहा, ऐसा करो, सिद्ध हो जाएगा प्रयोग से। तुममें से जो भी जमीन पर पैर गड़ाए रहे और आकाश को छूने में समर्थ हो जाए, वही श्रेष्ठ है।

दोनों लग गए। स्वप्न ने तो तत्क्षण आकाश छू लिया, देर न लगी, लेकिन पैर उसके जमीन तक न पहुंच सके। टंग गया आकाश में। हाथ तो लग गए आकाश से, लेकिन पैर जमीन से न लगे--स्वप्न के पैर होते ही नहीं। यथार्थ जमीन में पैर गड़ाकर खड़ा हो गया, जैसे कि कोई वृक्ष हो, लेकिन ठूंठ की तरह, आकाश तक उसके हाथ न पहुंचे। ब्रह्मा ने कहा, समझे कुछ? स्वप्न अकेला आकाश में अटक जाता है, यथार्थ अकेला जमीन पर भटक जाता है। कुछ ऐसा चाहिए कि स्वप्न और यथार्थ का मेल हो जाए।

तो बुद्ध वायवी नहीं हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्होंने आकाश नहीं छुआ। उन्होंने आकाश छुआ, लेकिन यथार्थ के आधार पर छुआ। इस फर्क को समझना। बुद्ध ने अपने पैर तो जमीन पर रोके, बुद्ध ने यथार्थ को तो जरा भी नहीं भुलाया, यथार्थ में बुनियाद रखी; भवन उठा, मंदिर ऊंचा उठा, मंदिर पर स्वर्णकलश चढ़े। लेकिन मंदिर के स्वर्णकलश टिकते तो जमीन में छिपे हुए पत्थरों पर हैं, भूमि के भीतर छिपे हुए बुनियाद के पत्थरों पर टिकते हैं। बुद्ध ने एक मंदिर बनाया, जिसमें बुनियाद भी है और शिखर भी।

बहुत लोग हैं, जिनको हम नास्तिक कहते हैं, वे जमीन पर अटके रह जाते हैं। वे ठूंठ की तरह हैं। यथार्थ का ठूंठ। मार्क्सवादी हैं या चार्वाकवादी हैं, वे यथार्थ का ठूंठ। वे जमीन में तो पैर गड़ा लेते हैं, लेकिन उनके भीतर आकाश तक उठने की कोई अभीप्सा नहीं है, आकाश तक उठने की कोई क्षमता नहीं है। और चूंकि वे सपने को काट डालते हैं बिल्कुल और कह देते हैं, आदर्श है ही नहीं जगत में। बस यही सब कुछ है, मिट्टी ही सब कुछ है। उनके जीवन में कमल नहीं फूलता, कमल नहीं उठता। कमल का उपाय ही नहीं रह जाता। जिसको इनकार कर दिया आग्रहपूर्वक, उसका जन्म नहीं होता।

और फिर दूसरी तरफ सिद्धांतवादी हैं; एब्सट्रेक्ट, वायवी विचारक हैं; वे आकाश में ही पर मारते रहते हैं, वे कभी जमीन पर पैर नहीं रोकते हैं। वे आदर्श में जीते हैं, यथार्थ से उनका कभी कोई मिलन ही नहीं होता। उनकी आंखों में आकाश-कुसुम खिलते हैं, असली कुसुम नहीं। बुद्ध स्वप्नवादी नहीं हैं, परम व्यावहारिक हैं। लेकिन चार्वाक जैसे व्यवहारवादी भी नहीं हैं। उनका व्यवहारवाद अपने भीतर परम आदर्श की संभावना छिपाए हुए है। लेकिन वे

कहते हैं, शुरू तो करना होगा जमीन पर पैर टेकने से। जिसके पैर जमीन में जितनी मजबूती से टिके हैं, वह उतनी ही आसानी से आकाश को छूने में समर्थ हो पाएगा। मगर यात्रा तो शुरू करनी पड़ेगी जमीन में पैर टेकने से।

इसलिए जब कोई बुद्ध के पास आता है और ईश्वर की बात पूछता है, वे कहते हैं, व्यर्थ की बातें मत पूछो। अनेकों को तो लगा कि बुद्ध अनीश्वरवादी हैं, इसलिए ईश्वर के बाबत जवाब नहीं देते। यह बात सच नहीं है। बुद्ध कहते हैं, पहले जमीन में तो पैर गड़ा लो, पहले ध्यान में तो उतरो, पहले अंतस चेतना में तो जड़ें फैला लो, पहले तुम जो हो उसको तो पहचान लो, फिर यह पीछे हो लेगा। यह अपने से हो लेगा। यह एक दिन अचानक हो जाता है। जब जमीन में वृक्ष की जड़ें खूब मजबूती से रुक जाती हैं, तो वृक्ष अपने आप आकाश की तरफ उठने लगता है। एक दिन आकाश में उठे वृक्ष में फूल भी खिलते हैं, वसंत भी आता है। मगर वह अपने से होता है। असली बात जड़ की है। तो बुद्ध बहुत गहरे में यथार्थवादी हैं, लेकिन उनका यथार्थ आदर्श को समाहित किए हुए है। वह आदर्श समन्वित है यथार्थ में।

ओशो के इस वचन का तात्पर्य क्या है- 'गौतम बुद्ध शास्त्रीय पंडित नहीं हैं, वैज्ञानिक हैं'?

गौतम बुद्ध शास्त्रीय पंडित नहीं हैं, वैज्ञानिक हैं। ओशो कहते हैं--

बुद्ध ने धर्म को पहली दफे वैज्ञानिक प्रतिष्ठा दी। बुद्ध ने धर्म को पहली दफे विज्ञान के सिंहासन पर विराजमान किया। इसके पहले तक धर्म अंधविश्वास था। बुद्ध ने उसे बड़ी गरिमा दी। बुद्ध ने कहा, अंधविश्वास की जरूरत ही नहीं है। धर्म तो जीवन का परम सत्य है। एस धम्मो सनंतनो। यह धर्म तो शाश्वत और सनातन है। तुम जब आंख खोलोगे तब इसे देख लोगे। इसलिए बुद्ध ने यह नहीं कहा कि नरक के भय के कारण मानो, और यह भी नहीं कहा कि स्वर्ग के लोभ के कारण मानो। और इसलिए यह भी नहीं कहा कि परमात्मा सताएगा अगर न माना, और परमात्मा पुरस्कार देगा अगर माना। नहीं, ये सब व्यर्थ की बातें बुद्ध ने नहीं कहीं।

बुद्ध ने तो सारसूत्र कहा। बुद्ध ने तो कहा, यह धर्म तुम्हारा स्वभाव है। यह तुम्हारे भीतर बह रहा है, अहर्निश बह रहा है। इसे खोजने के लिए आकाश में आंखें उठाने की जरूरत नहीं है, इसे खोजने के लिए भीतर जरा सी तलाश करने की जरूरत है। यह तुम हो, यह तुम्हारी नियति है, यह तुम्हारा स्वभाव है। एक क्षण को भी तुमने इसे खोया नहीं, सिर्फ विस्मरण हुआ है।

तो बुद्ध ने चैतन्य की सीढ़ियां कैसे पार की जाएं, मूर्च्छा से कैसे आदमी अमूर्च्छा में जाए, बेहोशी कैसे टूटे और होश कैसे जगे, इसका विज्ञान थिर किया। और जो उनके साथ भीतर गए, उन्हें निरपवाद रूप से मान लेना पड़ा कि बुद्ध जो कहते हैं, ठीक कहते हैं। यह अपूर्व क्रांति थी। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। बुद्ध मील के पत्थर हैं मनुष्य-जाति के इतिहास में। संत तो बहुत हुए, मील के पत्थर बहुत थोड़े लोग होते हैं। महावीर भी मील के पत्थर नहीं हैं। क्योंकि महावीर ने जो कहा, वह तेईस तीर्थंकर पहले कह चुके थे। कृष्ण भी मील के पत्थर नहीं हैं। क्योंकि कृष्ण ने जो कहा, वह उपनिषद और वेद सदा से कहते रहे थे। बुद्ध मील के पत्थर हैं, जैसे लाओत्सू मील का पत्थर है। कभी-कभार, करोड़ों लोगों में एकाध संत होता है, करोड़ों संतों में एकाध मील का पत्थर होता है। मील के पत्थर का अर्थ होता है, उसके बाद फिर मनुष्य-जाति वही नहीं रह जाती। सब बदल जाता है, सब रूपांतरित हो जाता है। एक नयी दृष्टि और एक नया आयाम और एक नया आकाश बुद्ध ने खोल दिया।

बुद्ध के साथ धर्म अंधविश्वास न रहा, अंतर्खोज बना। बुद्ध के साथ धर्म ने बड़ी छलांग ली। आस्तिक को ही धर्म में जाने की सुविधा न रही, नास्तिक को भी सुविधा हो गयी। ईश्वर को नहीं मानते, कोई हर्ज नहीं, बुद्ध कहते ही नहीं कि मानना जरूरी है। कुछ भी नहीं मानते, बुद्ध कहते हैं, तो भी कोई चिंता की बात नहीं। कुछ मानने की जरूरत ही नहीं है। बिना कुछ माने अपने भीतर तो जा सकते हो। भीतर जाने के लिए मानने की आवश्यकता क्या है! न तो ईश्वर

को मानना है, न आत्मा को मानना है, न स्वर्ग-नर्क को मानना है। इसे तो नास्तिक भी इनकार न कर सकेगा कि मेरा भीतर है। इसे तो नास्तिकों ने भी नहीं कहा है कि भीतर नहीं है। भीतर तो है ही। नास्तिक कहते हैं, यह भीतर शाश्वत नहीं है। बुद्ध कहते हैं, फिकर छोड़ो, पहले यह जितना है उसे जान लो, उसी जानने से अगर शाश्वत का दर्शन हो जाए तो फिर मानने की जरूरत न होगी; तुम मान ही लोगे।

बुद्ध ने नास्तिकों को धार्मिक बनाने का महत कार्य पूरा किया। इसलिए बुद्ध के पास जो लोग आकर्षित हुए, बड़े बुद्धिमान लोग थे। आमतौर से धार्मिक साधु-संतों के पास बुद्धिहीन लोग इकट्ठे होते हैं। जड़, मूर्च्छित, मुर्दा। बुद्ध ने मनुष्य-जाति की जो श्रेष्ठतम संभावनाएं हैं, उनको आकर्षित किया। बुद्ध के पास नवनीत इकट्ठा हुआ चैतन्य का। ऐसे लोग इकट्ठे हुए जो और किसी तरह तो धर्म को मान ही नहीं सकते थे, उनके पास प्रज्वलित तर्क था। इसलिए बुद्ध दार्शनिक नहीं हैं, लेकिन बुद्ध के पास इस देश के सबसे बड़े से बड़े दार्शनिक इकट्ठे हो गए। बुद्ध अकेले एक व्यक्ति के पीछे इतना दर्शनशास्त्र पैदा हुआ, जितना मनुष्य-जाति के इतिहास में किसी दूसरे व्यक्ति के पीछे नहीं हुआ। और बुद्ध के पीछे इतने महत्वपूर्ण विचारक हुए कि जिनकी तुलना सारी पृथ्वी पर कहीं भी खोजनी मुश्किल है।

कैसे यह घटित हुआ? बुद्ध ने महानास्तिकों को आकर्षित किया। आस्तिक को बुला लेना मंदिर में तो कोई खास बात नहीं, नास्तिक को बुला लेने में कुछ खास बात है। बुद्ध वैज्ञानिक हैं, इसलिए नास्तिक भी उत्सुक हुआ। विज्ञान को तो नास्तिक ठुकरा न सकेगा। बुद्ध ने कहा, संदेह है, चलो, संदेह की ही सीढ़ी बनाएंगे। संदेह से और शुभ क्या हो सकता है! संदेह के पत्थर को सीढ़ी बना लेंगे। संदेह से ही तो खोज होती है। इसलिए संदेह को फेंको मत।

इस बात को समझना। जिसके पास जितनी विराट दृष्टि होती है, उतना ही वह हर चीज का उपयोग कर लेना चाहता है। सिर्फ क्षुद्र दृष्टि के लोग काटते हैं। क्षुद्र दृष्टि का आदमी कहेगा, संदेह नहीं चाहिए, श्रद्धा चाहिए। काटो संदेह को। लेकिन संदेह तुम्हारा जीवंत अंग है, काटोगे तो तुम अपंग हो जाओगे। संदेह का रूपांतरण होना चाहिए, खंडन नहीं। संदेह ही श्रद्धा बन जाए, ऐसी कोई प्रक्रिया होनी चाहिए। कोई कहता है, काटो कामवासना को। लेकिन काटने से तो तुम अपंग हो जाओगे। कुछ ऐसा होना चाहिए कि कामवासना राम की वासना बन जाए। ऊर्जा का अधोगमन ऊर्ध्वगमन बन जाए। तुम ऊर्ध्वरेतस बन जाओ। कुछ ऐसा होना चाहिए कि तुम्हारे कंकड़-पत्थर भी हीरों में रूपांतरित हो जाएं। कुछ ऐसा होना चाहिए कि तुम्हारे जीवन की कीचड़ कमल बन सके। बुद्ध ने वह कीमिया दी।

ओशो के इस वचन का तात्पर्य क्या है- 'गौतम बुद्ध पारंपरिक नहीं, मौलिक हैं'?

गौतम बुद्ध पारंपरिक नहीं, मौलिक हैं। ओशो कहते हैं--

गौतम बुद्ध किसी परंपरा, किसी लीक को नहीं पीटते हैं। वे ऐसा नहीं कहते हैं कि अतीत के ऋषियों ने ऐसा कहा था, इसलिए मान लो। वे ऐसा नहीं कहते हैं कि वेद में ऐसा लिखा है, इसलिए मान लो। वे ऐसा नहीं कहते हैं कि मैं कहता हूं, इसलिए मान लो। वे कहते हैं, जब तक तुम न जान लो, मानना मत। उधार श्रद्धा दो कौड़ी की है। विश्वास मत करना, खोजना। अपने जीवन को खोज में लगाना, मानने में जरा भी शक्ति व्यय मत करना। अन्यथा मानने में ही फांसी लग जाएगी। मान-मानकर ही लोग भटक गए हैं। तो बुद्ध न तो परंपरा की दुहाई देते, न वेद की। न वे कहते हैं कि हम जो कहते हैं, वह ठीक होना ही चाहिए। वे इतना ही कहते हैं, ऐसा मैंने देखा। इसे मानने की जरूरत नहीं है। इसको अगर परिकल्पना की तरह ही स्वीकार कर लो, तो काफी है।

परिकल्पना का अर्थ होता है, हाइपोथीसिस। जैसे कि मैंने तुमसे कहा कि भीतर आओ, भवन में दीया जल रहा है। तो मैं तुमसे कहता हूं कि यह मानने की जरूरत नहीं है कि भवन में दीया जल रहा है। इसको विश्वास करने की जरूरत नहीं। इस पर किसी तरह की श्रद्धा लाने की जरूरत नहीं है। तुम मेरे साथ आओ और दीए को जलता देख लो।

दीया जल रहा है तो तुम मानो या न मानो, दीया जल रहा है। और दीया जल रहा है तो तुम मानते हुए आओ कि न मानते हुए आओ, दीया जलता ही रहेगा। तुम्हारे न मानने से दीया बुझेगा नहीं, तुम्हारे मानने से जलेगा नहीं। इसलिए बुद्ध कहते हैं, तुम सिर्फ मेरा निमंत्रण स्वीकार करो। इस भवन में दीया जला है, तुम भीतर आओ। और यह भवन तुम्हारा ही है, यह तुम्हारी ही अंतरात्मा का भवन है। तुम भीतर आओ और दीए को जलता देख लो। देख लो, फिर मानना।

और खयाल रहे, जब देख ही लिया तो मानने की कोई जरूरत नहीं रह जाती है। हम जो देख लेते हैं, उसे थोड़े ही मानते हैं। हम तो जो नहीं देखते, उसी को मानते हैं। तुम पत्थर-पहाड़ को तो नहीं मानते, परमात्मा को मानते हो। तुम सूरज-चांदत्तारों को तो नहीं मानते, वे तो हैं। तुम स्वर्गलोक, मोक्ष, नर्क को मानते हो। जो नहीं दिखायी पड़ता, उसको हम मानते हैं। जो दिखायी पड़ता है, उसको तो मानने की जरूरत ही नहीं रह जाती है, उसका यथार्थ तो प्रगट है।

तो बुद्ध कहते हैं, मेरी बात पर भरोसा लाने की जरूरत नहीं, इतना ही काफी है कि तुम मेरा निमंत्रण स्वीकार कर लो। इतना पर्याप्त है। इसको वैज्ञानिक कहते हैं, हाइपोथीसिस, परिकल्पना। एक वैज्ञानिक कहता है, सौ डिग्री तक पानी गर्म करने से पानी भाप बन जाता है। मानने की कोई जरूरत नहीं, चूल्हा तुम्हारे घर में है, जल उपलब्ध है, आग उपलब्ध है, चढ़ा दो चूल्हे पर जल को, परीक्षण कर लो। परीक्षण करने के लिए जो बात मानी गयी है, वह परिकल्पना। अभी स्वीकार नहीं कर ली है कि यह सत्य है, लेकिन एक आदमी कहता है, शायद सत्य हो, शायद असत्य हो, प्रयोग करके देख लें, प्रयोग ही सिद्ध करेगा--सत्य है या नहीं? तो बुद्ध पारंपरिक नहीं हैं, मौलिक हैं। विचार की परंपरा होती है, दृष्टि की मौलिकता होती है। विचार अतीत के होते हैं, दृष्टि वर्तमान में होती है। विचार दूसरों के होते हैं, दृष्टि अपनी होती है।

ओशो के इस वचन का तात्पर्य क्या है- 'गौतम बुद्ध दार्शनिक नहीं, द्रष्टा हैं'?

गौतम बुद्ध दार्शनिक नहीं, द्रष्टा हैं। ओशो कहते हैं--

दार्शनिक वह, जो सोचे। द्रष्टा वह, जो देखे। सोचने से दृष्टि नहीं मिलती। सोचना अज्ञात का हो भी नहीं सकता। जो ज्ञात नहीं है, उसे हम सोचेंगे भी कैसे? सोचना तो ज्ञात के भीतर ही परिभ्रमण है। सोचना तो ज्ञात की ही धूल में लोटना है। सत्य अज्ञात है। ऐसे ही अज्ञात है जैसे अंधे को प्रकाश अज्ञात है। अंधा लाख सोचे, लाख सिर मारे, तो भी प्रकाश के संबंध में सोचकर क्या जान पाएगा! आंख की चिकित्सा होनी चाहिए। आंख खुलनी चाहिए। अंधा जब तक द्रष्टा न बने, तब तक सार हाथ नहीं लगेगा। तो पहली बात बुद्ध के संबंध में स्मरण रखना, उनका जोर द्रष्टा बनने पर है। वे स्वयं द्रष्टा हैं। और वे नहीं चाहते कि लोग दर्शन के ऊहापोह में उलझें। दार्शनिक ऊहापोह के कारण ही करोड़ों लोग दृष्टि को उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। प्रकाश की मुफ्त धारणाएं मिल जाएं, तो आंख का महंगा इलाज कौन करे! सस्ते में सिद्धांत मिल जाएं, तो सत्य को कौन खोजे! मुफ्त, उधार सब उपलब्ध हो, तो आंख की चिकित्सा की पीड़ा से कौन गुजरे! और चिकित्सा कठिन है। और चिकित्सा में पीड़ा भी है।

बुद्ध ने बार-बार कहा है कि मैं चिकित्सक हूं। किसी सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं कर रहे हैं। वे किसी दर्शन का सूत्रपात नहीं कर रहे हैं। वे केवल उन लोगों को बुला रहे हैं जो अंधे हैं और जिनके भीतर प्रकाश को देखने की प्यास है। और जब लोग बुद्ध के पास गए, तो बुद्ध ने उन्हें कुछ शब्द नहीं पकड़ाए, बुद्ध ने उन्हें ध्यान की तरफ इंगित और इशारा किया। क्योंकि ध्यान से खुलती है आंख, ध्यान से खुलती है भीतर की आंख। विचारों से तो पर्त की पर्त तुम इकट्ठी कर लो, आंख खुली भी हो तो बंद हो जाएगी। विचारों के बोझ से आदमी की दृष्टि खो जाती है। जितने विचार

के पक्षपात गहन हो जाते हैं, उतना ही देखना असंभव हो जाता है। फिर तुम वही देखने लगते हो जो तुम्हारी दृष्टि होती है। फिर तुम वह नहीं देखते, जो है। जो है, उसे देखना हो तो सब दृष्टियों से मुक्त हो जाना जरूरी है। इस विरोधाभास को खयाल में लेना, दृष्टि पाने के लिए सब दृष्टियों से मुक्त हो जाना जरूरी है।

ओशो की दृष्टि में भगवान बुद्ध उनके पूर्व में हुए आध्यात्मिक मनीषियों से किस प्रकार भिन्न हैं?

ओशो कहते हैं कि गौतम बुद्ध ऐसे हैं जैसे हिमाच्छादित हिमालय। पर्वत तो और भी हैं, हिमाच्छादित पर्वत और भी हैं, पर हिमालय अतुलनीय है। उसकी कोई उपमा नहीं है। हिमालय बस हिमालय जैसा है।

गौतम बुद्ध बस गौतम बुद्ध जैसे। पूरी मनुष्य-जाति के इतिहास में वैसा महिमापूर्ण नाम दूसरा नहीं। गौतम बुद्ध ने जितने हृदयों की वीणा को बजाया है, उतना किसी और ने नहीं। गौतम बुद्ध के माध्यम से जितने लोग जागे और जितने लोगों ने परम-भगवत्ता उपलब्ध की है, उतनी किसी और के माध्यम से नहीं।

गौतम बुद्ध के संबंध में सात बातें मुख्य रूप से समझने योग्य हैं-

1. 'गौतम बुद्ध दार्शनिक नहीं, द्रष्टा हैं'?
2. गौतम बुद्ध पारंपरिक नहीं, मौलिक हैं'?
3. 'गौतम बुद्ध शास्त्रीय पंडित नहीं हैं, वैज्ञानिक हैं'?
4. 'गौतम बुद्ध वायुवीय, हवाई, एब्सट्रेक्ट नहीं, अत्यंत व्यावहारिक हैं'?
5. 'गौतम बुद्ध विधिवादी नहीं, मानवीय हैं'?
6. 'गौतम बुद्ध नियमवादी नहीं हैं, बोधवादी हैं'?
7. 'गौतम बुद्ध असहज के पक्षपाती नहीं, सहज के उपदेष्टा हैं'?

ओशो की दृष्टि में इस त्रिशरण मंत्र का क्या महत्व है- बुद्धं शरणम गच्छामि, धम्मं शरणम गच्छामि, संघं शरणम गच्छामि?

ओशो की दृष्टि उन्हीं के प्यारे शब्दों में पढ़िए--

समर्पण अनिवार्य है। फिर चाहे मार्ग भक्ति का हो, चाहे ध्यान का। फर्क इतना ही पड़ेगा कि भक्ति के मार्ग पर समर्पण पहले है, पहले चरण में, और ध्यान के मार्ग पर समर्पण है अंतिम चरण में। भक्ति कहती है, अहंकार को छोड़कर ही मंदिर में प्रवेश करो। क्योंकि जिसे छोड़ना ही है, उसे इतने दूर भी क्यों साथ ढोना? छोड़ ही दो। भक्ति पहले ही क्षण में अहंकार को गिरा देती है। भक्ति को सुविधा है, क्योंकि भगवान की धारणा है। ये हैं तीन रत्न--बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि।

पहले तो बुद्ध के प्रति। बुद्ध का अर्थ गौतम बुद्ध नहीं है। इस भ्रांति में मत पड़ना। बुद्ध का अर्थ है, बुद्धत्व। एक बार बुद्ध से किसी ने पूछा कि आप तो कहते हैं कि किसी की शरण में जाने की जरूरत नहीं है और लोग आपके सामने ही आकर कहते हैं--बुद्धं शरणं गच्छामि? आप चुप रहते हैं। चुप्पी से तो समर्थन मिलता है। यह तो मौन समर्थन हो गया। आपको इंकार करना चाहिए। जो कभी जागे और कभी जागेंगे और जाग रहे हैं, उस जागरण का नाम बुद्धत्व है।

तो बुद्ध ने कहा, अगर मुझमें उन्हें दिखायी पड़ती है बुद्धत्व की झलक, चलो, यही ठीक! आज यहां दिखायी पड़ती है, कल और भी कहीं दिखायी पड़ेगी, फिर दिखायी पड़ती जाएगी। फिर सब तरफ दिखायी पड़ने लगेगी। एक

उस झरोखे से तुम्हें सूरज दिखायी पड़ा। खयाल रखना, जब तुम किसी झरोखे के पास खड़े होकर सूर्य को नमस्कार करते हो तो तुम झरोखे को नमस्कार नहीं कर रहे हो। हालांकि चाहे तुम्हें पहले ऐसा ही लगता हो कि इस झरोखे की बड़ी कृपा--इसी से तो सूरज दिखायी पड़ा न! नहीं तो अंधेरे में ही रहते--तो चाहे तुम झरोखे को धन्यवाद भी दो, लेकिन झरोखे के माध्यम से तुम धन्यवाद तो सूरज को ही दे रहे हो। तो पहली समर्पण की भावना है--बुद्धं शरणं गच्छामि।

दूसरी समर्पण की धारणा है--संघं शरणं गच्छामि। संघ का अर्थ होता है, उन सबको जो जागे हैं। जो जाग रहे हैं। जो जागने के करीब आ रहे। जो स्रोतापन्न फल को प्राप्त हो गए। तो अब दृष्टि थोड़ी बड़ी हुई। अब बुद्ध ही नहीं दिखायी पड़ते, अब बुद्ध में वे सब दिखायी पड़ने लगे जो उनके आसपास हैं। जो सब बुद्ध की तरफ उन्मुख हैं। और धम्मं शरणं गच्छामि का अर्थ होता है, बुद्ध की शरण भी तो इसीलिए गए न कि उन्होंने सत्य को पा लिया, और संघ की शरण भी इसीलिए गए न कि वे सत्य की खोज में जा रहे हैं, तो सत्य की ही शरण जा रहे हो, चाहे बुद्ध की शरण जाओ, चाहे संघ की शरण जाओ। इसलिए, धम्मं शरणं गच्छामि। धम्म का अर्थ होता है सत्य। जो परम सत्य है, वही धर्म है।

बौद्ध शब्दावली में निर्वाण और महापरिनिर्वाण में क्या अंतर है? उपनिषद कालीन ऋषियों के निर्वाण से, बुद्ध की धारणा बिल्कुल अलग क्यों है?

बौद्ध शब्दावली में निर्वाण का अर्थ है दीपक का बुझ जाना, अहंकार का मिट जाना--अनत्ता का अनुभव।

महापरिनिर्वाण का अर्थ है निर्वाण को उपलब्ध व्यक्ति का देह-त्यागना, महाशून्य में विलय होना।

उपनिषद कालीन ऋषियों ने निर्वाण कहा है परमानंद की अनुभूति को, परमात्मा से साक्षात्कार को, ब्रह्मज्ञान को।

ओशो ने समझाया कि दोनों का भावार्थ एक ही है, केवल अभिव्यक्ति की शैली भिन्न-भिन्न है।

जैसे बुद्ध नकारात्मक ढंग से कह रहे हैं कि रोग समाप्त होगा, पीड़ा मिट जाएगी।

ऋषि सकरात्मक ढंग से कह रहे हैं कि स्वास्थ्य प्राप्त होगा, सुखद अवस्था मिलेगी।

क्या पूर्णिमा के पीछे कोई आध्यात्मिक रहस्य छिपा है जिस कारण से पूर्णिमा को भगवान बुद्ध का जन्म हुआ, पूर्णिमा को परम ज्ञान घटित हुआ और उन्होंने देह भी पूर्णिमा को ही त्यागी?

"एस धम्मो सनंतनो" के प्रवचन-70 में ओशो ने समझाया है-

बुद्ध के जीवन में यह उल्लेख है कि बुद्ध पूर्णिमा की रात्रि में पैदा हुए। फिर पूर्णिमा की रात्रि में ही संबोधि को उपलब्ध हुए, फिर पूर्णिमा की रात्रि में ही मरे। यह बात पुराण की लगती है, इतिहास की नहीं लगती। ऐसा हो भी सकता है संयोगवशात, कोई आदमी पूर्णिमा को ही पैदा हो, पूर्णिमा ही को ज्ञान को उपलब्ध हो, पूर्णिमा को ही मरे, लेकिन यह बात जरा पौराणिक मालूम पड़ती है, ऐतिहासिक कम। वही दिन पैदा होना, वही दिन ज्ञान को पाना, वही दिन मर जाना, इतना संयोग बैठना जरा मुश्किल होता है। यह शायद इतिहास की बात नहीं भी हो, लेकिन यह बात मूल्यवान है।

पूर्णिमा तो प्रतीक है पूर्णता का। उस पूर्णता के प्रतीक को पकड़कर पुराण कहता है, बुद्ध पूरे पैदा हुए..पूर्णिमा की रात पैदा हुए..शीतल पैदा हुए, पूरी छवि से पैदा हुए, पूरे सौंदर्य से पैदा हुए, अपूर्व अमृत को लेकर पैदा हुए। फिर पूर्णिमा की रात्रि ही उनके भीतर छिपा हुआ यह अमृत बहा, प्रगट हुआ, स्फुटित हुआ, यह कमल खिला। फिर पूर्णिमा

की रात को ही बुद्ध ज्ञान को उपलब्ध हुए, क्योंकि ज्ञान भी पूर्णिमा की रात्रि है। फिर बुद्ध पूर्णिमा की रात्रि ही विदा हुए, क्योंकि मृत्यु भी बुद्ध की पूर्ण होगी, जन्म भी पूर्ण होगा। बुद्ध के जीवन में सभी पूर्ण है। इस बात को कहने के लिए कि बुद्ध के जीवन में सभी पूर्ण है, हमने यह प्रतीक चुन लिया, यह पूर्णिमा की रात्रि। प्रतीक लोग अलग-अलग चुनते हैं, लेकिन प्रतीक मूल्यवान न होकर, प्रतीकों में जो हम अर्थ डालते हैं वह मूल्यवान है।

इसलिए बुद्धपुरुषों के पास पुराण खड़ा होता, पुराण कथाएं निर्मित होतीं। उन्हीं पुराण कथाओं के अर्थ को पकड़ लेकर तुम बुद्धत्व को समझोगे कि क्या अर्थ है।

दुनिया में दो तरह के नासमझ हैं। एक हैं जो सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि ये पुराण कथाएं सच हैं, ऐतिहासिक अर्थों में सच हैं, ये पागल हैं। इनकी वजह से व्यर्थ की झंझट खड़ी होती है। ये कविताओं को सत्य सिद्ध करने में लग जाते हैं। जैसे किसी ने कहा कि चांद को देखकर मुझे अपनी प्रेयसी की याद आ गयी, और चांद ऐसे लगा जैसे मेरी प्यारी का मुखड़ा हो।

अब तुम इससे झगड़ा करने लग सकते हो कि चांद और प्यारी के मुखड़े में कोई संबंध नहीं है। कहां चांद, कहां प्यारी का मुखड़ा! तुम्हें कुछ होश है! कितना बड़ा चांद और कितना सा मुखड़ा, छोटा सा। अब यह प्यारी के ऊपर इतना बड़ा चांद रख दो तो मर ही जाएगी। और चांद, तुम्हें पता है, अभी तो वैज्ञानिक पत्थर-कंकड़ भी ले आए वहां से, वहां कुछ सौंदर्य नहीं है। कंकड़-पत्थर, मिट्टी, खाई-खड्ड, यही है। कहां प्यारी का मुखड़ा और कहां चांद! कहां खाई-खड्डों से तुम प्यारी के मुखड़े की बात कर रहे हो! होश में हो?

अगर कोई ऐसी जिद्द करे तो मुश्किल में डाल देगा। तुम सिद्ध न कर पाओगे, तुम कहोगे कि क्षमा करो, कविता लिखी, गलती हो गयी।

मगर तुम समझे नहीं। क्योंकि कविता जिसने लिखी थी वह यह कह भी नहीं रहा था, जो तुम कह रहे हो। वह तो इतना ही कह रहा था कि कुछ साम्य, कुछ तालमेल, चांद को देखकर किसी सौंदर्य का भीतर आगमन, चांद को देखकर भीतर किसी लहर का जन्म लेना। वह लहर ठीक वैसे ही है जैसी मेरी प्रेयसी के चेहरे को देखकर मेरे भीतर लेती है। उन दोनों सौंदर्यों में कुछ समता है, कुछ तालमेल है..एक ही वेवलेंथ..इतना ही कह रहा है वह।

यह नहीं वह कह रहा कि चांद और मेरी प्रेयसी का मुखड़ा एक सी चीज हैं, वह कोई गणित के हिसाब से नहीं बोल रहा है, वह इतना ही कह रहा है कि चांद को देखकर भी मेरे भीतर कुछ वैसी ही कसमसाहट हो जाती है जैसी मेरी प्यारी के चेहरे को देखकर हो जाती है। चांद के साथ भी मैं वैसा ही लवलीन हो जाता हूं जैसा मैं अपनी प्यारी के चेहरे को देखकर लवलीन हो जाता हूं, इतना ही कह रहा है। वह एक साम्य की बात कर रहा है। और साम्य बड़ा बारीक है और साम्य चांद में और प्यारी के चेहरे में नहीं है, साम्य उसके हृदय में है।

तो जिन्होंने लिखा है कि बुद्ध पूर्णिमा को पैदा हुए, बुद्ध पूर्णिमा को ज्ञान को उपलब्ध हुए, बुद्ध ने पूर्णिमा को शरीर त्यागा, हो सकता है यह पूर्णिमा उनके भक्तों के हृदय में हो, यह भक्तों ने अनुभव किया हो कि ऐसा होना ही चाहिए। बुद्ध और किसी और दिन पैदा हो जाएं, यह बात जंचेगी नहीं। अब जैसे दसमी को पैदा हो गए, जरा जंचेगी नहीं, जरा बेहूदा लगेगा, ऐसा होना नहीं चाहिए कि बुद्ध और दसमी को पैदा हो गए! कि ग्यारस को ज्ञान हो गया! यह बात कुछ जंचेगी नहीं। जरा सोचो तुम, दसमी को बुद्ध का पैदा होना जंचता नहीं, पूर्णिमा को बात बिल्कुल ठीक पड़ती है, ऐसा होना चाहिए। जिन्होंने बुद्ध को प्रेम किया है, उनके हृदय में झांको तो बात ख्याल में आ जाएगी।

आज बुद्ध पूर्णिमा के पावन पर्व पर बताइये कि भगवान बुद्ध पर ओशो ने कितने प्रवचन दिए हैं?

सर्वप्रथम स्वीकार कीजिए- बुद्ध पूर्णिमा की अनेकानेक बधाईयां एवं शुभकामनाएं।

भगवान बुद्ध के प्रसिद्ध ग्रंथ 'धम्मपद' पर ओशो ने हिन्दी और अंग्रेजी में दो बार अलग-अलग व्याख्यान दिए। ऐसा गौरव केवल दो और मनीषियों को, ताओवादी संत लाओत्से और संत शिरोमणि कबीर साहब को मिला है। इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि बुद्ध, लाओत्से एवं कबीर; ओशो को अत्यंत प्रिय रहे। धम्मपद पर हिन्दी प्रवचनमाला में 122 तथा अंग्रेजी में 126 व्याख्यान हुए।

इसके अतिरिक्त बुद्ध के सूत्रों पर 62 प्रवचनों वाली तीन श्रंखलाएं और भी हैं-

The Diamond Sutra, The Discipline of Transcendence, The Heart Sutra

बुद्ध और बुद्ध-परंपरा में हुए अन्य बुद्ध-पुरुषों, विशेषकर चीन और जापान के झेन सदगुरुओं पर ओशो ने 72 प्रवचनमालाओं में करीब 1200 घंटे के 800 से अधिक प्रवचन दिए हैं।

ओशो एवं अन्य संत

ईकहार्ट टोले और ओशो की शिक्षा में क्या समानताएं हैं?

ईकहार्ट टोले और ओशो, दोनों दार्शनिक और आध्यात्मिक विचारधारा के प्रवर्तक एवं विश्वप्रसिद्ध प्रचारक हैं। इन दोनों के शिक्षा में कुछ समानताएं हैं, जो निम्नलिखित हैं--

क्षण-क्षण जीवनः इन दोनों ही महानुभावों ने वर्तमान में जीने पर बहुत जोर दिया है। न बीता हुआ कल, न भावी आगामी कल, बस वर्तमान का यह पल ही सब कुछ है।

आध्यात्मिकता का महत्वः इकहार्ट टोले और ओशो दोनों के शिक्षा में आध्यात्मिकता एक महत्वपूर्ण तत्त्व है। इनके अनुयायियों को आत्मविकास और आंतरिक शांति की प्राप्ति के लिए साधना करने का उपदेश दिया जाता है।

मौन साधनाः इकहार्ट टोले और ओशो दोनों के शिक्षा में मौन ध्यान का अत्यंत महत्व है। शिष्यों को निरंतर मौलिक चिंतन करने और निर्विचार ध्यान में रहने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इससे व्यक्ति के अंतरंग विकास में सहायता मिलती है। बाहरी मौन एवं सम्यक वाणी के प्रयोग से भीतरी मौन सधता है, जहां मौन का संगीत यानी अनहद नाद सुनाई देता है।

ध्यान और प्रज्ञाः दोनों गुरुओं ने ध्यान और अंतः मेधा (समझ की शक्ति) को विकसित करने की प्रेरणा दी है। इनके अनुयायी सच्चे अनुभव के माध्यम से अपनी आंतरिक प्रज्ञा और ध्यान को समझने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। बुद्ध ने कहा है कि ध्यान से प्रज्ञा और प्रज्ञा से ध्यान में परस्पर मदद मिलती है। ध्यान एवं प्रज्ञा, दोनों के समन्वय से समाधि फलित होती है।

जीवन-मूल्यों को प्रोत्साहनः इकहार्ट टोले और ओशो दोनों ने अच्छे जीवन-मूल्यों के प्रति व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया है। सत्य, अहिंसा, करुणा, समता, प्रेम, मैत्री, तथाता और धर्म के अन्य महत्वपूर्ण बिंदुओं को समझाने का प्रयास किया गया है।

संवेदनशीलताः इकहार्ट टोले और ओशो दोनों ने संवेदनशीलता के प्रति जागरूकता फैलाई है। वे अपने अनुयायियों को संवेदनशील होने के लिए प्रोत्साहित करते हैं और समस्याओं का समाधान करने में सक्षम बनाने का प्रयास करते हैं। इंद्रियों का दमन नहीं करना है बल्कि उनका परिष्कार करना है।

जे. कृष्णमूर्ति और ओशो की शिक्षा में क्या समानताएं हैं?

श्री जे. कृष्णमूर्ति और ओशो (पूर्वनामः भगवान श्री रजनीश, आचार्य रजनीश, रजनीश चंद्र मोहन जैन) इन दोनों मनीषियों की विचारधारा और शिक्षाओं में कुछ समानताएं हैं, लेकिन उनके दर्शनिक दृष्टिकोण और उपास्य आदर्श काफी भिन्न हैं। इन दोनों व्यक्तियों की शिक्षाओं और धार्मिक उपदेशों का विश्लेषण व्यक्तिगत स्तर पर किया जाना चाहिए। यहां कुछ मुख्य समानताएं बताई जा रही हैं, जो उनके विशिष्ट विचारों और निजी व्यक्तित्वों के खास पहलुओं को छोड़कर हैं--

लक्ष्य समान, विधि असमानः यद्यपि दक्षिण भारत में जन्मे जिद्दू कृष्णमूर्ति ने और मध्य भारत में जन्मे ओशो ने भी निर्विचार जागृति की अमनी अवस्था को ही ध्येय बताया है लेकिन कृष्णमूर्ति ने इस साध्य को प्राप्त करने के लिए साधनों की अवहेलना की, जबकि ओशो ने मार्ग के द्वारा भी मंजिल तक जाने की प्रस्तावना की है, किंतु कुछ विरले प्रतिभाशाली लोगों के लिए बिना साधना के भी साध्य उपलब्धि संभव है, ऐसा भी कहा है।

आत्म-अनुशासनः दोनों गुरुओं ने अपने शिष्यों को आत्म-अनुशासनपूर्ण नियमित जीवन की शिक्षा दी है। उन्होंने समझाया है कि अनुशासन के माध्यम से मानसिक शांति और आत्मिक समृद्धि प्राप्त की जा सकती है। दोनों मनीषी बाहर से थोपे गए अनुशासन के विरोधी हैं, क्योंकि उससे पाखंड, दमन, अंतर्द्वन्द्व और भीतरी संघर्ष उत्पन्न होता है।

ध्यान और प्रज्ञाः दोनों ने ध्यान, मेधा और धार्मिकता के महत्व को समझाया और उन्हें अपने शिष्यों के जीवन में अपनाने की प्रोत्साहना की। उन्होंने सच्चे और निरंतर ध्यान के माध्यम से अध्यात्मिक उन्नति के लिए जागृति-पथ की महत्ता बताई।

मौलिक चिंतन-मनन और आत्म-समीक्षाः जे. कृष्णमूर्ति और ओशो दोनों ने अपने शिष्यों को, दूसरों के विचारों से मुक्त होकर स्वयं सोचने, खुद की समीक्षा करने, और अपने अंदर के अर्थों और मूल्यों की खोज में संलग्न होने को प्रोत्साहित किया। उन्होंने उन्हें साधारण जीवन के पीछे छिपे असाधारण अर्थ को समझने के लिए प्रेरित किया।

आत्म-संतुष्टि का मार्गः दोनों गुरुओं ने संतुष्टि के मार्ग की महत्ता पर जोर दिया। वे अपने शिष्यों को बताते हैं कि संतुष्ट रहने से जीवन में सुख और शांति प्राप्त होती है। ऐसा संतोष बाहरी वस्तुओं अथवा व्यक्तियों से प्राप्त नहीं होता। हमारी अंतरात्मा में ही वह मौजूद है, अतः स्वयं की गहराईयों में डूबों और परमानंद को जानो।

यहां ध्यान देने योग्य है कि जे. कृष्णमूर्ति एक सख्त परंपरा-विरोधी संत थे, जबकि ओशो ने भक्ति, ध्यान, तांत्रिक साधना, योग, ताओ, झेन और अन्य अतीत की धार्मिक पद्धतियों के अलावा भौतिकता और जीवन को भी सम्मान सहित स्वीकार किया। ओशो के क्रांतिकारी उपदेशों में धर्म, शिक्षा, सेक्स, प्रेम, परिवार, स्वास्थ्य, तत्कालीन सामाजिक व राजनीतिक मुद्दे भी शामिल थे।

ओशो और शेख फरीद

'अकथ कहानी प्रेम की'--ऐसा क्यों कहा जाता है? अवर्णनीय का वर्णन क्यों किया जाता है?

'अकथ कहानी प्रेम की, कछु कही न जाए।
गूंगे केरी सरकरा, खाइ और मुस्काय॥'

संत कबीर के समकालीन एक सूफी संत शेख फरीद हुए हैं। उनके वचनों पर व्याख्यान देते हुए ओशो ने यह शीर्षक रखा। बाद में कबीर की एक पुस्तक होनी होय सो होय तथा फरीद की एक पुस्तक अकथ कहानी प्रेम की, इन दोनों को मिलाकर एि वृहत संकलन प्रकाशित हुआ--न कानों सुना, न आंखों देखा।

ओशो समझाते हैंः यह कहानी है प्रेम की, जो भी अपने शीश को रख दे, ले जाए। जो भी अपने शीश को गिरा दे, उस पर बरस जाता है प्रेम का मेघ, भर जाता है हृदय का घट, बहने लगता है ऊपर से, बंटने लगता है दूसरों को। और प्रेम ऐसी मुक्ति है कि मोक्ष की भी वहां चाहना नहीं। प्रेम इतनी परम मुक्ति है कि वहां मुक्ति की भी कोई वासना नहीं रह जाती। ऐसी अकथ कहानी प्रेम की, कछु कही न जाए--कहना कठिन है इस कहानी को। कहना असंभव है। जाने सो जाने, जी ले तो जाने--अनुभव हो जाए।

एक बार किसी साधक ने प्रश्न कियाः अकथ कहानी प्रेम की--कबीर, नानक, दादू, फरीद, मीरा, चैतन्य--आप कहते हैं, कहते ही चले जाते हैं। कहानी आगे बढ़ती जाती है। उसका अंत आता हुआ नहीं मालूम होता। क्या कोई अंत है या नहीं?

ओशो ने उत्तर दियाः प्रेम का प्रारंभ है, अंत नहीं। इसे थोड़ा समझना पड़े।

प्रेम का प्रारंभ है, अंत नहीं; घृणा का अंत है, प्रारंभ नहीं। तुमने घृणा कब प्रारंभ की, तुम्हें कुछ पता है? तुम बता सकोगे, फलां दिन, फलां तारीख कैलेंडर में, उस दिन घृणा शुरू हुई? घृणा तुम लेकर ही आए हो जैसे। उसका कोई प्रारंभ नहीं है, अंत है। क्योंकि जिस दिन प्रेम का जन्म होगा, उसी दिन घृणा का अंत हो जाएगा। प्रेम का प्रारंभ होगा अंत नहीं होगा।

पुराने ज्ञानियों ने जो शब्द प्रयोग किए हैं, वे बड़े ठीक हैं। महावीर ने कहा हैः संसार का कोई प्रारंभ नहीं है, अंत है। मोक्ष का प्रारंभ है, अंत नहीं है। ठीक कही है बात। मोक्ष का भी अंत हो जाए तो वह क्या मोक्ष होगा? संसार का अंत है, लेकिन प्रारंभ नहीं है। कब हुआ संसार शुरू, बता सकोगे? पूछो महावीर से, बुद्ध से, कब संसार शुरू हुआ? वे कहेंगेः कभी शुरू नहीं हुआ, बस है। पर इतना वे कह सकते हैं कि एक घड़ी आई जब अंत हुआ। चालीस वर्ष के थे बुद्ध, तब एक रात अंत हो गया संसार का, मोक्ष शुरू हुआ। अब तुम पूछो कि मोक्ष का अंत होगा कभी? कभी नहीं होगा।

जीवन में जो पाप है, उसका प्रारंभ नहीं होता, अंत होता है। और जीवन में जो पुण्य है, उसका प्रारंभ होता है और अंत नहीं होता।

अकथ कहानी प्रेम की! वह शुरू तो होती है। एक दिन वीणा के तार बजने शुरू होते हैं, उसके पहले भनक भी नहीं थी। फिर वीणा बजती ही चली जाती है। सब समाप्त हो जाता है, पर वीणा के स्वर फिर गूंजते ही रहते हैं। वह गूंज अनंत की है, शाश्वत की है। वह गूंज समय का हिस्सा नहीं है, समय के पार है।

तो एक दिन तुम जागते जरूर हो, लेकिन फिर तुम कभी सोते नहीं। जो प्रेम में जाग गया, जाग गया। इसलिए तो हमने प्रेम को शाश्वत कहा है। और जब तक प्रेम शाश्वत न हो तब तक प्रेम का धोखा रहा होगा। जो प्रेम पैदा हो और समाप्त हो जाए, उसे तुम कुछ और कहना, कृपा करके प्रेम मत कहना। और नाम खोज लेना, लेकिन प्रेम मत कहना। क्योंकि प्रेम की तो परिभाषा यही है कि जो शुरू हो और समाप्त न हो। प्रेम इतना विराट है कि तुम ही उसमें समाप्त हो जाते हो; तुम उसे कैसे समाप्त कर पाओगे!

एक कहानी मुझे सदा प्रीतिकर रही है। रामकृष्ण कहते थे। मेला भरा था समुद्र के तट पर। बड़ा विवाद चल रहा था कि समुद्र अथाह है या नहीं। भीड़ इकट्ठी हो गई थी। बड़े पंडित शास्त्र खोल कर बैठे थे। बड़ी उत्तेजना फैल गई थी कि कौन जीतता, कौन हारता! बैठे सब किनारे पर थे। सागर में कोई उतर न रहा था। बैठ कर ही चर्चा हो रही थी। शब्दों की मार चल रही थी। बाल की खाल खींची जा रही थी। कोई कहता था, अथाह है, क्योंकि अब तक किसी ने भी नहीं कहा कितनी थाह है। अगर थाह होती तो कोई नाप लेता। दूसरे कह रहे थेः चूंकि अब तक नापा नहीं गया, तुम कैसे कह सकते हो कि अथाह है? नाप हो जाए, और पता चले कि नाप नहीं हो पाता, तो ही अथाह कहना।

अब इसमें बड़ी जटिलता थी। नाप अब तक हुआ नहीं है, तो थाह तो कह ही नहीं सकते अथाह भी नहीं कह सकते। पर किसी को यह ख्याल नहीं आ रहा था कि उतरें और कूद जाएं। कहते हैं, नमक के दो पुतले भी उस भीड़ में खड़े थे। उनको जोश आ गया। उन्होंने कहाः रुको जी। विवाद से क्या होगा? हम पता लगा कर आते हैं।

वे दोनों कूद गए। वे जैसे-जैसे नीचे जाने लगे, वैसे-वैसे बड़े हैरान हुए कि सागर की गहराई का तो अंत नहीं होता, खुद पिघलते जा रहे हैं! नमक के पुतले थे। कहते हैं, वे पहुंच भी गए बड़ी गहराई में; लेकिन जब लौटने का ख्याल आया तो वे थे ही नहीं; वे तो जा चुके थे। नमक पानी में घुल चुका था, सागर का हिस्सा हो चुका था।

ऐसा कई दिनों तक लोग घाट पर प्रतीक्षा करते रहे और उन्होंने कहा कि फिजूल है मेहनत अब और रुके रहना। शास्त्र का अर्थ फिर से शुरू किया जाए, यह बेकार मेहनत गई। यह समय ऐसे ही गया। इस बीच तो हम शास्त्र से ही निर्णय कर लेते। फिर विवाद शुरू हो गया। और वे जो डूब गए गहराई में; वे कभी लौटे नहीं कहने, थाह है या नहीं।

कहानी अभी भी वहीं उलझी है--थाह है या नहीं है? विवाद घाट पर अब भी चल रहा है। पंडित अब भी अपनी-अपनी बातें कर रहे हैं। ये जो दो नमक के पुतले हैं, ये संतों के प्रतीक हैं, ये संतत्व के प्रतीक हैं। जैसे सागर में नमक का पुतला घुल जाता है, ऐसे ही हम परमात्मा में घुल जाते हैं, उसके प्रेम में घुल जाते हैं। दो क्यों चुने प्रतीक? क्योंकि जब तक हम घुले नहीं तब तक दो मालूम होते हैं। घुल गए तो दो भी नहीं रह जाते, एक भी नहीं रह जाता; अद्वैत हो जाता है। फिर लौट कर कहे कौन? बताए कौन? थोड़ी देर राह पर बैठे हुए, घाट पर बैठे हुए पंडित प्रतीक्षा करते हैं; फिर वे कहते हैं, ये भी गए, कोई लौट कर बताता नहीं; हम अपना शास्त्रार्थ फिर शुरू करें। वे फिर विचार में लीन हो जाते हैं।

निर्विचार में जाना जाता है। विचार में सिर्फ विवाद है। शून्य में पहचान है। शब्द में केवल सिर-फोड़ है। लेकिन जो शून्य में उतरता है, वह प्रेम को समाप्त नहीं कर पाता, स्वयं समाप्त हो जाता है। इसलिए--अकथ कहानी प्रेम की!

ओशो और लाओत्से

चीन के ताओवादी संत लाओत्से की आध्यात्मिक साधना किस चक्र से संबंधित है?

लाओत्से की मुख्य साधना नाभि केन्द्र से संबंधित है। इसे चीनी और जापानी भाषा में ताण्डेन और हारा केन्द्र भी कहा जाता है। *लाओत्से को मानने वाले कहते हैं कि जिस व्यक्ति को अपने केंद्र का पता चल जाता है, उसकी चेतना उस केंद्र का इसी मछली की तरह चक्कर लगाने लगती है। और तब चेतना में विकास शुरू हो जाता है। जिनको केंद्र का ही पता नहीं है, वे उस मछली की तरह रह जाएंगे--बेजान, लोच, निर्जीव। क्योंकि कोई केंद्र नहीं है, जिसके आस-पास वे घूम सकें और विकसित हो सकें। उनको दिशा ही नहीं मालूम पड़ेगी--कहां जाएं? क्या करें? क्या हो जाएं? भटकेंगे वे भी।*

ओशो समझाते हैं कि--एक ही परिधि पर निरंतर परिभ्रमण से चेतना विकसित होती है। ध्यान नाभि का रखो। बैठो, ध्यान नाभि का रखो। उठो, ध्यान नाभि का रखो। कुछ भी करो, लेकिन तुम्हारी चेतना नाभि के आस-पास घूमती रहे। एक मछली बन जाओ और नाभि के आस-पास घूमते रहो। और शीघ्र ही तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर एक नई शक्तिशाली चेतना का जन्म हो गया।

इसके अद्भुत परिणाम हैं। और इसके बहुत प्रयोग हैं। आप यहां एक कुर्सी पर बैठे हुए हैं। लाओत्से कहता है कि आपके कुर्सी पर बैठने का ढंग गलत है। इसीलिए आप थक जाते हैं। लाओत्से कहता है, कुर्सी पर मत बैठो। इसका यह मतलब नहीं कि कुर्सी पर मत बैठो, नीचे बैठ जाओ। लाओत्से कहता है, कुर्सी पर बैठो, लेकिन कुर्सी पर वजन मत डालो। वजन अपनी नाभि पर डालो। लाओत्से कहता है, कुर्सी पर बैठो जरूर, लेकिन फिर भी अपनी नाभि में ही समाए रहो। सब कुछ नाभि पर टांग दो। और घंटों बीत जाएंगे और आप नहीं थकोगे।

अपने केंद्र को खोज लें। और जब तक नाभि के करीब केंद्र न आ जाए--ठीक जगह नाभि से दो इंच नीचे, ठीक नाभि भी नहीं--नाभि से दो इंच नीचे जब तक केंद्र न आ जाए, तब तक तलाश जारी रखें। और फिर इस केंद्र को स्मरण रखने लगें। श्वास लें तो यही केंद्र ऊपर उठे, श्वास छोड़ें तो यही केंद्र नीचे गिरे। तब एक सतत जप शुरू हो जाता है--सतत जप। श्वास के जाते ही नाभि का उठना, श्वास के लौटते ही नाभि का गिरना--अगर इसका आप स्मरण रख सकें... ।

स्मरण का अर्थ हैः सतत, कांसटेंट रिमेंबरिंग। यह केंद्र ऊर्जा का केंद्र है। इससे जो संयुक्त है, उसकी महिमा अपार है। क्योंकि वह निरंतर अनंत ऊर्जा को उपलब्ध कर रहा है।

एक तो सतत स्मरण रखें नाभि के केंद्र का और उसके आस-पास ही अपनी चेतना को परिभ्रमण करने दें। वही मंदिर है, उसकी ही परिक्रमा जारी रखें। आप साक्षी मात्र रह जाएंगे। योग कहता है, साक्षी की साधना करो। लाओत्से कहता है, सिर्फ नाभि को सतत स्मरण रखो, साक्षी की घटना फलित हो जाएगी, घटित हो जाएगी।

सतत स्मरण रखें। केंद्र को खोजें, सतत स्मरण रखें। पहली बात, केंद्र को खोज लें। दूसरी बात, स्मरण रखें। तीसरी बात, बार-बार जब स्मरण खो जाए, तो स्मरण खोता है इसका भी स्मरण रखें। वह थोड़ा कठिन पड़ेगा।

चौथी बात, जब स्मरण पूरा हो जाए, केंद्र स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे, अनुभव होने लगे, तो सब कुछ केंद्र के लिए समर्पित कर दें, सरेंडर कर दें। उस केंद्र को ही कह दें कि तू ही मालिक है, अब मैं छोड़ता हूं। और यह आसान हो जाता है।

लाओत्से कहता है, जिस दिन इस केंद्र का पता चलता है, उस दिन समर्पण करना नहीं पड़ता, आपको अनुभव होने लगता है कि केंद्र मालिक है ही, मेरे बिना केंद्र सब कुछ कर रहा है। श्वास ले रहा है, छोड़ रहा है; जीवन की धारा चल रही है; नींद आ रही है, जागरण आ रहा है; जन्म हो रहा है, मृत्यु हो रही है; सब केंद्र कर रहा है मेरे बिना कुछ किए। तो अब समर्पण का क्या सवाल है? समर्पण हो जाता है।

तो चौथी, आखिरी जो घटना है इस साधना में, वह है केंद्र के प्रति समर्पण को अनुभव कर लेना। फिर अहंकार के बचने का कोई उपाय नहीं--कोई उपाय ही नहीं। ऐसी समर्पित अवस्था में व्यक्ति परम सत्ता को उपलब्ध हो जाता है।

गुरु और शिक्षक

गुरु और शिक्षक के बीच क्या अंतर हैं?

गुरु और शिक्षक के बीच अंतर—

⭕ *एक शिक्षक आपके विकास की जिम्मेदारी लेता है।*

✅ एक गुरु आपको आपके विकास के लिए जिम्मेदार बनाता है।

⭕ *शिक्षक आपके प्रश्नों का उत्तर देता है।*

✅ गुरु आपके उत्तरों पर सवाल उठाता है। स्वयं जानने की जिज्ञासा पैदा करता है।

⭕ *शिक्षक आपको आचरण रूपी वस्त्र पहनाता है और बाहरी यात्रा के लिए तैयार करता है।*

✅ गुरु आपको नग्न करके आंतरिक यात्रा के लिए तैयार करता है।

⭕ *शिक्षक पथ पर मार्गदर्शक होता है।*

✅ गुरु केवल मार्ग सूचक होता है, अतर्यात्रा खुद ही करनी पड़ती है।

⭕ *शिक्षक आपको बाहरी जगत में सफलता की राह पर भेजता है।*

✅ गुरु आपको भीतरी चैतन्य की मुक्ति की राह पर भेजता है।

⭕ *शिक्षक आपको संसार और उसकी प्रकृति समझाता है।*

✅ गुरु आपके स्वभाव का सीधा ज्ञान प्राप्त कराने में सहायक होता है।

⭕ *शिक्षक आपको निर्देश देता है।*

✅ गुरु आपका विवेक विकसित करता है ताकि आप स्वयं निर्णय ले सकें।

⭕ *शिक्षक आपके दिमाग को तेज़ करता है।*

✅ गुरु आपकी बुद्धि से परे, स्व-बोध का द्वार खोलता है।

⭕ *शिक्षक आपको समस्याओं को हल करने की विधि देता है।*

✅ गुरु आपको दिखाता है कि समस्याओं का जन्म क्यों होता है?

⭕ *शिक्षक हमेशा सरलता से सर्वत्र मिल जाता है।*

✅ गुरु को स्वयं ढूंढना और हृदय से स्वीकारना पड़ता है, जो बहुत कठिन है।

⭕ *शिक्षक जिंदगी में आपका हाथ पकड़कर आगे बढ़ाता है।*

✅ गुरु उदाहरण देकर आपको परोक्ष दिशा संकेत करता है।

⭕ *शिक्षक के साथ व्यावसायिक संबंध होते हैं।*

✅ गुरु के संग केवल हार्दिक और आत्मिक संबंध होते हैं।

⭕ *जब कोई शिक्षक आपका कार्य पूरी कर देता है तो आप जश्न मनाते हैं।*

✅ जब कोई गुरु आपके साथ सफल हो जाता है, तो जीवन जश्न मनाता है।

सार संक्षेप में--

शिक्षक हमें सभ्यता, नैतिकता, वैचारिक जानकारी आदि का ज्ञान देकर समाज में जीने योग्य बनाता है। गुरु हमारे चित्त को निर्मल, निर्विचार, निर्विकल्प करके परमात्मा में जीने का गुर देता है। शिक्षक परंपरा द्वारा प्रतिष्ठित होता है, क्योंकि वह पिछली पीढ़ी के ज्ञान को नई पीढ़ी के मन में प्रतिष्ठित करता है। रूढ़िवादी समाज की नजरों में गुरु हमेशा निंदनीय प्रतीत होता है, क्योंकि वह अतीत के बोझ से मुक्ति दिलाकर वर्तमान क्षण आनंदपूर्वक में जीने का सूत्र देकर विद्रोह जन्माता है।

क्या बिना गुरु के ज्ञान हो सकता है?

हो सकता, तो अभी तक हो ही गया होता! हा हा हा... !!

मनुष्य पहली अवस्था हैः अंधकार की, अज्ञान की, अर्थात जानकारी के अंधेपन की। परमात्मा अंतिम अवस्था हैः परमज्ञान की, दिव्य आलोक की, निर्विचार सजगता की। गुरु दोनों के बीच का सेतु है--आधा मनुष्य जैसा, आधा परमात्मा जैसा। प्रभु से हमारा सीधा संबंध नहीं जुड़ सकता। गुरु मध्य में है, दोनों का संपर्क स्थल है। जो हमारा वर्तमान है, वह उसका अतीत था। जो हमारा भविष्य है, वह उसका वर्तमान है। वह एक ऐसा काम कर सकता है जो परमात्मा भी नहीं कर सकता--वह परमात्मा से मिला सकता है। कबीर ने ठीक ही गाया है-

तीन लोक नौ खंड में, गुरु ते बड़ा न कोय।
करता करै न करि सकै, गुरु करै सो होय॥

परमात्मा का सीधा साक्षात संभव नहीं। हम बाहर-बाहर भटक रहे, परमात्मा भीतर-भीतर मौजूद है। दोनों के बीच कोई सेतु नहीं। जो भी परमात्मा को खोजने गया, पहले उसे गुरु ही मिला। इसका मतलब है कि परमात्मा तुम्हारे प्रति सदय हुआ, तुम्हारे भाग्य खुले। मांगो परमात्मा, मिलता सदा गुरू है। गुरु मिल जाए, तो समझो कि तुम्हारी प्रार्थना सुनी गई। अब तुम अकेले नहीं हो। सेतु बना; दोनों किनारे जुड़े। तुम इस किनारे हो, परमात्मा उस किनारे है। गुरु दोनों किनारों को जोड़ देता है। वह परमात्मा की ओर इशारा, संकेत, मार्गदर्शन बन जाता है। तभी तो कबीर कहते हैं-

गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काको लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय॥

ओशो कहते हैं कि गुरु का एक हाथ तुम्हारे हाथ में, एक हाथ परमात्मा के हाथ में। अब इस सहारे तुम जा सकोगे। दूसरा किनारा बहुत दूर है और दूसरे किनारे को देखने वाली आंखे भी अभी तुम्हारी जन्मी नहीं। वह प्रगाढ़ संवेदनशीलता अभी पैदा नहीं हुई।

गुरु को त्रिदेव से भी ऊपर पार-ब्रह्म क्यों कहते हैं? और आषाढ़ माह में गुरु पूर्णिमा मनाने के पीछे क्या रहस्य है?

गुरु पूर्णिमा के रहस्यः ओशो

गुरु पूर्णिमा, गुरु को सम्मान में समर्पित पावन अवसर, आध्यात्मिक अभ्यास में गहरा महत्व रखता है। "गुरु" के लिए अंग्रेजी में कोई समानार्थी शब्द नहीं है। शिक्षक यानी गुरु नहीं होता है। शिक्षक कुछ सिखाता है, अपने छात्रों के साथ अपने बौद्धिक ज्ञान को साझा करता है। वह उनकी स्मृति, तार्किक क्षमता और दिमाग की जानकारियों को को बढ़ाता है। गुरु इसके विपरीत एक स्थिति बनाता है जहां शिष्यों का मन चुप हो जाता है। ध्यानी अवस्था में, सभी

बौद्धिक क्रियाएं थोड़ी देर के लिए रुक जाती हैं। निर्विचार जागरूकता घटती है, गहन शांति और दिव्य आनंद की अनुभूति के संग।

क्रिश्चियन त्रिमूर्ति की तरह, हिंदू धर्म में त्रिमूर्ति की एक अवधारणा है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश शामिल हैं। ये तीन देवता उत्पादक, संचालक और विनाशक के रूप में काम करते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि 'गॉड' शब्द का तीन कार्यों का संक्षेप रूप है। गुरु को तीनों देवताओं का इकट्ठा रूप माना जाता है। यह उपमा आध्यात्मिक यात्रा के विभिन्न पहलुओं का प्रतीक है। जैसे ही खोजी इन तीन चरणों से आगे बढ़ते हैं, वे अपने भीतर एक रूपांतरण का अनुभव करते हैं। सबसे पहले, गुरु शिव के रूप में कार्य करते हुए शिष्य के अहंकार को नष्ट करते हैं। दूसरे, वे ब्रह्मा के रूप में काम करते हैं, शिष्य को नया जन्म देकर उसे द्विज बनाते हैं। तीसरे, वे विष्णु के रूप में काम करते हैं, नवजात शिष्य की देखभाल करते हैं और उसका पालन-पोषण करते हैं।

इसके आगे गुरु चौथे चरण के भी प्रतीक हैं, जिसे तुरिया कहा जाता है। खोजी शिष्य यह अनुभव करता है कि गुरुदेव एक साधारण व्यक्ति नहीं हैं, बल्कि दिव्यता की, भगवत्ता की साकार मूर्ति हैं। वे तीनों देवताओं से भी परे, परम ब्रह्मा हैं। तब गुरु शिष्य की आत्मा को प्रतिबिंबित करने वाला एक दर्पण बन जाता है। जब शिष्य गुरु के भीतर ईश्वर को अनुभव करते हैं, तो वे खुद में और फिर सर्वत्र परमात्मा को पहचान लेते हैं।

गुरु पूर्णिमा, आषाढ़ माह की पूर्णिमा को मनाई जाती है, जो शिष्य की अंधकार से प्रकाश की ओर यात्रा की प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है। चंद्रमा की मधुर एवं कोमल रौशनी के गुरु से मिलने वाले आध्यात्मिक ज्ञान की प्रतीक है। जैसे चंद्रमा सूरज की रौशनी को प्रतिबिंबित करता है, ठीक वैसे ही गुरु भी शिष्य द्वारा समझे जाने योग्य रूप में, परमात्मा को ही प्रकट करता है।

जिस तरह समुद्र का जल पीने योग्य नहीं है, उसी तरह विशाल, असीम, अनंत ईश्वर से सीधे मिलना खोजी में भय पैदा कर सकता है। सतत सूर्य को सीधे देखने से आंखों को हानि हो सकती है, लेकिन चंद्रमा की शीतल चांदनी देखना बहुत पोषणदायी होता है। हालांकि चंद्रमा सिर्फ सूर्य की रौशनी को प्रतिबिंबित कर रहा होता है। गुरु भी प्रभु-ऊर्जा को गृहण योग्य और पाचन योग्य रूप में बदलने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गुरु-कृपा के माध्यम से, खोजी दिव्य ज्ञान के आशीष को प्राप्त तथा स्वयं में समाविष्ट कर सकते हैं।

गुरु की सत्ता को पहचानकर, व्यक्ति अंततः अपने भीतर दिव्यता को पहचानता है। वह क्रमशः एक जिज्ञासु छात्र से प्रेमपूर्ण शिष्य में और अंततः भक्त में परिवर्तित होकर परब्रह्म की स्थिति तक पहुंचता है।

गुरु पूर्णिमा पर्व, गुरु द्वारा आध्यात्मिक यात्रा पर गहरे प्रभाव की याद दिलाता है। यह गुरु की कृपा के मार्गदर्शन में आत्म-साक्षात्कार के मार्ग पर निकलने के लिए प्रेरित करता है।

गुरु शब्द यह भी अर्थ रखता है कि जिसमें रहस्यमय आध्यात्मिक आकर्षण होता है। हिंदी में पृथ्वी के खिंचाव को गुरुत्वकर्षण कहा जाता है। गुरु यानी भारी, गहरा; उथला नहीं, हल्का नहीं। कबीर जैसे संतों ने कहा है कि अगर गुरु और ईश्वर साथ साथ मेरे सामने प्रकट हो जाएं, तो मैं अपने गुरु को नमन करूंगा, ईश्वर को नहीं। क्योंकि मेरे करुणामय गुरु ने मुझे ईश्वर को जानने का रास्ता दिखाया है। ईश्वर भी ऐसा नहीं कर सकता, केवल गुरु ही इस कार्य को कर सकता है।

इस पर्व के लिए वर्षा ऋतु की पूर्णिमा ही क्यों चुनी गई? चंद्रमा के श्वेत दिव्य गुण, ज्ञानी गुरु के प्रतिनिधि हैं, और मानसून के काले बादल उन अज्ञानी शिष्यों के प्रतीक हैं जो उसके चारों ओर इकट्ठे हो गए हैं। इसीलिए गुरु पूर्णिमा हेतु आषाढ़ माह की यह विशेष पूर्णिमा चुनी गई है।

"गुरु पूर्णिमा" पर्व का क्या महत्व है?

गुरु पूणिमा काव्य-प्रतीक है गुरु-शिष्य संबंध की। गुरु वह है जिसकी चेतना का चंद्रमा अपनी पूर्णता में खिल उठा, पूर्णिमा पर पहुंच गया। शिष्य वह है जो अज्ञान के अंधेरे से भरा है, और प्रकाश की खोज में है। निम्नांकित प्रश्नोत्तर में गुरु-शिष्य संबंध के महत्व पर ओशो का जवाब पढ़िए--

किसी ने पूछा यह प्रश्नः सद्गुरु और शिष्य को जले दीए और बुझे दीए की उपमा दी जाती है। कहते हैं कि जले दीए की आत्मिक निकटता में बुझा दीया अचानक जल उठता है। ज्योति जलाने के लिए कैसा हो शिष्य, कैसी हो बाती, कैसा हो तेल, कैसी हो निकटता?

ओशो ने उत्तर देते हुए समझाया कि शिष्य को बस शिष्य ही रहना चाहिए। एक शिष्य होने में सब कुछ शामिल है - बाती, तेल और निकटता। शिष्य शब्द में ही सार निहित है। शिष्यों की कोई श्रेणियाँ या प्रकार नहीं हैं; केवल एक ही तरह का शिष्य होता है। जैसे प्रेम, शांति और शून्यता एकवचन हैं, वैसे ही शिष्य की स्थिति भी एक ही है। कोई विविधता नहीं है; केवल समर्पण का स्वाद है। सभी महासागरों में पाए जाने वाले नमकीनपन की तरह होता है - चाहे इसे कहीं भी या कैसे भी अनुभव किया जाए, यह वही रहता है। शिष्य अस्तित्व का केंद्र होने के अहंकार के भ्रम को पार कर जाता है और इसके बजाय ब्रह्मांड की विशालता में विलीन हो जाता है। शिष्य अपने मैं-भाव को विसर्जित कर देता है।

यह विसर्जन एकदम से नहीं हो सकता, इसलिए सद्गुरु के सहयोग की आवश्यकता होती है। शिष्य परमात्मा से संबंध बनाना चाहता है, लेकिन परमात्मा की विशालता और अदृश्यता के कारण सेतु बनना असंभव लगता है। सद्गुरु शिष्य और परमात्मा के बीच सेतु का काम करते हैं। सद्गुरु शिष्य को परमात्मा की धड़कन सुनने में सक्षम बनाते हैं। सद्गुरु सीमित और अनंत, छोटे और महान के बीच एक सेतु का काम करते हैं। हालाँकि, सद्गुरु अंतिम गंतव्य नहीं है; बल्कि, वह एक सीढ़ी है जो हमें आगे बढ़ाती है। इस सीढ़ी का उपयोग करके, कृतज्ञता व्यक्त करके और आगे बढ़ते हुए, हम अपनी निजी यात्रा शुरू कर सकते हैं।

सद्गुरु रूपी सीढ़ी का महत्व सीमाओं और असीमता के सह-अस्तित्व में है। एक हाथ सीमित का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि दूसरा अनंत का प्रतीक है। जो हमें दिखाई देता है वह सीमित है, जबकि अदृश्य असीमित है। सद्गुरु, हमारी तरह, एक भौतिक रूप रखते हैं, लेकिन दिव्य के समान, पारलौकिक भी होते हैं। मानवता और परमात्मा के बीच का यह संबंध हमें सांत्वना और मार्गदर्शन प्रदान करते हुए व्यक्तिगत स्तर पर उससे जुड़ने में सहयोगी सिद्ध होता है।

दूर से, सद्गुरु हमारे जैसे ही दिखाई देते हैं, लेकिन जैसे-जैसे हम करीब आते हैं, एक खिड़की खुलती है, जिसमें परे अनंत आकाश की झलक दिखाई देती है। निकटता हमारी सीमित धारणा और उसके असीमित अस्तित्व के बीच स्पष्ट अंतर को उजागर करती है। जो लोग सद्गुरु की उपस्थिति का गहराई से अनुभव करते हैं, वे अक्सर उन्हें भगवान कहते हैं, जबकि दूर से संदेह करने वाले उनके दिव्य सार को पहचानने में विफल होने पर आपत्तियां और सवाल उठा सकते हैं।

उसी तरह, बुद्ध के शिष्यों ने उनके अंतरतम को करीब से जानने के बाद उन्हें भगवान के रूप में पहचाना। दूसरी ओर, जो लोग दूर रहते थे वे भीतर की गहराइयों को समझे बिना केवल उनके भौतिक स्वरूप को ही समझ पाते थे। जितना अधिक व्यक्ति खिड़की के करीब आता है, खिड़की उतनी ही अधिक दूर हो जाती है, जिससे परे की दुनिया के आश्चर्य हमें विमुग्ध कर देते हैं।

कोई सीधे ईश्वर की उपस्थिति की थाह नहीं ले पाता। गुरु के माध्यम से ईश्वर के साथ अप्रत्यक्ष संबंध स्थापित होता है। शिष्य झुक जाता है, सीखने के लिए और किसी ऐसे व्यक्ति के साथ संबंध स्थापित करने के लिए उत्सुक होता है जिसमें ईश्वरत्व का थोड़ा सा भी वास होता है। ऐसा रिश्ता दिव्य अनुभवों के दायरे के प्रवेश द्वार के रूप में कार्य

करता है। शिष्यत्व के लिए विनम्रता और सीखने की इच्छा की आवश्यकता होती है, क्योंकि जो लोग स्वयं को सर्वज्ञ मानते हैं वे वास्तव में शिष्य नहीं बन सकते। शिष्यत्व में अहंकार को त्यागना, अर्जित ज्ञान को अनसीखा करना और न जानने की स्थिति को अपनाना शामिल है।

व्यक्ति जितना अधिक ज्ञान एकत्रित करता है, आश्चर्य की भावना उतनी ही कम होती जाती है। आश्चर्य की यह भावना दुनिया के रहस्यों को समझने और उसके भीतर ईश्वर को पहचानने के लिए महत्वपूर्ण है। इस तरह की जिज्ञासा एक धार्मिक संबंध की ओर ले जाती है, जो आश्चर्य और पूछताछ की गहरी भावना से चिह्नित होती है। धर्म केवल शास्त्रों तक ही सीमित नहीं है; सच्चे शास्त्र जीवित अनुभवों से निकलते हैं, जैसे बुद्ध या कबीर के। जहां पंडित धर्मग्रंथों के बाहरी आवरण से चिपके रहते हैं, वहीं शिष्यों को धर्म-सार में डूबकर परमानंद मिलता है।

जब एक सद्गुरु प्रकट होता है, तो दो प्रकार के लोग सामने आते हैंः शिष्य और विद्वान। विद्वान अक्सर बौद्धिक गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जबकि शिष्य आध्यात्मिक क्षेत्र को अपना लेते हैं। शिष्य बनने के लिए व्यक्ति को स्वयं को उधार ज्ञान और उत्तरों से खाली करना होगा। अर्जित ज्ञान की बाधाओं को त्यागकर निकटता प्राप्त की जाती है। जब कोई धर्मग्रंथों को अलग रख सकता है और खुले दिल से संपर्क कर सकता है, तो वास्तविक समझ प्राप्त की जा सकती है।

शिष्य को बाती, तेल, या निकटता की बारीकियों के बारे में चिंता करने की ज़रूरत नहीं है; सच्चा शिष्य ऐसी चिंताओं से परे होता है। संक्षेप में, सद्गुरु हमें सीमाओं से असीमित संभावनाओं की ओर ले जाने वाली सीढ़ी के रूप में कार्य करते हैं। शिष्यत्व में अपने आप को अर्जित ज्ञान से खाली करना और आश्चर्य और जिज्ञासा के साथ आगे बढ़ना शामिल है। धर्मग्रंथों की पकड़ को त्यागकर और परमात्मा के साथ सीधा संबंध अपनाकर, सच्चे शिष्य ज्ञान के शाश्वत प्रकाश में आनंद ले सकते हैं।

ओशो को "गुरुओं का गुरु" क्यों कहा जाता है?

गुरु पूर्णिमा के उपलक्ष में यह रहस्य उजागर किया जा रहा है कि ओशो की "अल्प-भाषण शैली" की वजह से उन्हें यह सम्मान प्राप्त हुआ। एक बार स्वयं ओशो के एक शिष्य ने उनसे पूछा था यह प्रश्नः प्यारे भगवान, आपको गुरुओं का गुरु The Master of the Masters क्यों कहा जाता है?

उन्होंने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया कि- यह प्रश्न बहुत जटिल है। थोड़ा रुको, मुझे आकाशिक रिकार्डों में देखना पड़ेगा।

अरे... पिछले आकाशीय रिकार्डों में तो यह दर्ज नहीं है।

कुछ देर और इंतजार करो। भविष्य के आकाशीय रिकार्डों में खोजकर बताता हूं।

...ठीक, अभी-अभी जानकारी मिल गई है। यह भविष्य की कहानी है। बुद्धों के परम विश्राम स्थल यानी मोक्ष में घटी एक घटना के बारे में ध्यान से सुनो।

स्थानीय समाचार पत्र, 'द निर्वाण टाइम्स-लेस' के लिए एक पत्रकार, अगले संस्करण के मध्य पृष्ठ को भरने के लिए सामग्री की सख्त मांग कर रहा था। अखबार का यह अंक पच्चीस सौ वर्ष बाद प्रकाशित होने वाला था। मोक्ष के बारे में कोई खास खबर ही नहीं थी। जल्द ही उसे एहसास हुआ कि अगर केंद्र पृष्ठ को फिर से खाली नहीं छोड़ना है, जैसा कि अनगिनत युगों से होता आया है, तो उसे खुद ही कुछ रोमांचक कहानी गढ़नी होगी।

अंततः उसने निर्वाण में निवास करने वाले कई बुद्धों, सिद्धों, अरहतों, बोधिसत्वों, मसीहाओं, कुतुबों, तीर्थंकरों, अवतारों, ईश्वर-पुत्रों और अन्य प्रबुद्ध प्राणियों के मध्य एक आध्यात्मिक मिस्टर यूनिवर्स प्रतियोगिता रखी। 'गुरुओं के गुरु' चुनने की योजना बनाई।

सभी प्रबुद्धजनों को एक साथ बुलाकर उसने निवेदन किया कि आपको संक्षिप्त में बताना है कि आपकी शिक्षा का सार क्या है? सर्वश्रेष्ठ शिक्षा-सार वाला गुरु ही मास्टर ऑफ मास्टर्स की उपाधि का हकदार बनेगा। हमेशा की तरह मोक्ष में एक गहरा सन्नाटा कुछ सदियों तक छाया रहा। समस्त निवासी मौन की ध्वनि ओंकार में यथावत डूबे रहे। कोई हलचल न हुई।

आखिरकार पांच सौ साल बाद एक झेन मास्टर ने पत्रकार के सिर पर जोरदार प्रहार किया। फिर फर्श पर गिरे हुए संवाददाता को उठाकर उसने खिड़की से बाहर फेंक दिया। अनायास चौंकाकर जगाने वाला यह विचित्र व्यवहार झेन परंपरा के योग्य माना गया, लेकिन बहुत मौलिक नहीं था।

चोट खाया पत्रकार सौ साल और प्रतीक्षा करता रहा। फिर एक सूफी खड़ा हुआ और गोल-गोल चक्कर लगाने लगा। मोक्ष प्राप्ति के पश्चात् दुर्भाग्यवश अनेक सदियों पूर्व उसने दरवेश नृत्य के प्रशिक्षण को छोड़ दिया था, इसलिए कुछ महीनों बाद वह अपने चेहरे पर औंधे मुंह गिरा। इस दुर्घटना से हसीद मास्टर्स के बीच खुशी की लहर दौड़ गई, जो अरब के महान संतों को नीचा दिखाने के लिए चुपके से फर्श पर तेल डाल रहे थे।

मंजुश्री और सुभूति के द्वारा कान में कुछ फुसफुसाने के बाद, गौतम बुद्ध धीरे से खड़े हुए और सात कदम चलकर सभा को इस प्रकार संबोधित किएः न कोई अनुशासन है और न कुछ साधने योग्य है। कोई गुरु नहीं है और कोई शिष्य भी नहीं है। सत्य अनिर्विचनीय है, इसे सुनने वाला भी कोई नहीं है।

फिर बुद्ध ने एक फूल पकड़कर मौन साध लिया। तीन सौ साल बाद महाकश्यप खिलखिलाया। कई लोगों ने बुद्ध की सराहना की, महाकश्यप की पीठ थपथपाई। लेकिन पत्रकार को यह खबर, उस तरह की नहीं लगी, जिससे अखबार बेचने में जरा भी मदद मिले।

एक के बाद एक प्रबुद्धजन पुरस्कार पाने के लिए आगे आते गए। मूसा ने कुछ 11 आज्ञाएँ दीं: दस प्राचीन, एक नवीन। मगर कुछ मजेदार बात न बनी। बोधिधर्म 90 साल तक एक दीवार को ताकते रहे। निराश पत्रकार बोला कि भिक्षु जी, इससे हमारा पेट नहीं भर सकता।

ईसा मसीह ने राई का पहाड़ बनाया, पत्थर से रोटी बनाई तथा अन्य पुराने ढंग के चमत्कार दिखाए। पत्रकार बोला कि आजकल जादुई तरकीबों के बारे में छोटे-छोटे बच्चे तक जानने लगे हैं। यह कलाकारी अब आकर्षक या मनोरंजक नहीं लगती। अंधविश्वासी युग बीत गए, वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त लोग इस खबर को पढ़कर हमारा समाचार पत्र खरीदना ही बंद कर देंगे।

डायोजनीज ने अपना सनटैन प्रदर्शित किया। सागर किनारे घूप में लेटे-लेटे वे काफी काले हो चुके थे। शिव और पार्वती ने 113 वीं नूतन ध्यान विधि का आविष्कार किया था। गुरजिएफ ने ब्रांडी की 21 बोतलें पी लीं, फिर अपने चेहरे के बाईं ओर से मुस्कुराते हुए और दाईं ओर से गुस्साते हुए विचित्र भाषा में कुछ कहा। समझ किसी को कुछ न आया फिर भी इन अजीबोगरीब हरकतों पर बेचारा पत्रकार औपचारिकतावश ठहाका मारकर हँसा।

एक भारतीय महात्मा अपने पैरों को ऊपर करके, शीर्षासन लगाकर चिल्लाया, कि मैं 84 करोड़ जन्मों से ब्रह्मचारी रहा हूँ, अतः मुझे ही चुना जाए। किंतु पतंजलि की असहमति से जागृत लोगों ने फैसला किया कि इस महात्मा की समाधि अभी तक निर्बीज नहीं हुई है, गुरुओं के गुरु बनने की वासना शेष है। उस बेचारे को अपने बीज दग्ध करने के लिए एक बार पुनः संसार में वापस भेज दिया गया।

जैसे ही महात्माजी दृष्टि से ओझल हुए, वात्स्यायन ने खुद को अस्तित्वगत रूप से महागुरु साबित करने के लिए एक झटका दिया कि सेक्स और समाधि एक ही ऊर्जा की अभिव्यक्तियाँ हैं। मंसूर ने अनल हक! अनल हक! चिल्लाना बंद नहीं किया, जब तक कि उसे रस्सियों में बांधकर कर, दो वैलियम की गोलियां जबरदस्ती न खिला दी गईं। वह तब भी छटपटाता रहा। और इसी तरह की अनेक घटनाएं होती गईं किंतु पत्रकार को संतुष्टि न मिली सो न मिली। यह चुनना असंभव था कि जागृत लोगों में से कौन मास्टर ऑफ मास्टर्स है, क्योंकि पत्रकार भी बहुत पहले चॉइसलेस अवेयरनेस को प्राप्त कर चुका था।

एक दिन सुबह आठ बजे, भारत के एक सुपरस्टार अभिनेता, राजनेता-सांसद एवं ओशो संन्यासी स्वमी विनोद भारती ने विशिष्ट फिल्मी अंदाज के साथ घोषित किया कि सबसे महान गुरु वह है जो अभी तक नहीं आया है। अब आने वाला है। अचानक भगवान श्री रजनीश अपने कमरे से बाहर निकले। नमस्ते की मुद्रा में हाथ जोड़े, मुस्कराते हुए वे एक छोटे से संगमरमर के मंच की ओर आगे बढ़े, जहां एक कुर्सी रखी हुई थी। एक भयानक खामोशी ने दर्शकों को ऐसे जकड़ लिया कि छटपटाता हुआ मंसूर भी चुप हो गया। शांत सभा विस्मय विमुग्ध हो गई।

जैसे ही भगवान कुर्सी पर बैठकर माइक्रोफोन की ओर झुके, सदा से मौन महावीर से एक चीख निकली--रुकिए! रुकिए! हम लोग आपको मास्टर ऑफ मास्टर घोषित करते हैं! कृपया तुरंत अपने कमरे में वापस जाइए। समस्त बुद्धों, सिद्धों, अरहतों, बोधिसत्वों, मसीहाओं, कुतुबों, तीर्थंकरों, अवतारों, ईश्वर-पुत्रों ने अपनी सहमति जाहिर कर दी। यहां तक कि भगवान के विरोधियों के प्रमुख जे. कृष्णमूर्ति ने भी सर्वसम्मति में पूरी तरह साथ दिया।

भोलेपन से मुस्कराए हुए भगवान हॉल से बाहर चले गए। मोक्ष में लंबे समय बाद राहत की सांस ली गई। पत्रकार महावीर की ओर विस्मय से मुड़कर पूछने लगाः तीर्थकर जी, मुझे समझ नहीं आया कि उन्होंने उपाधि क्यों प्राप्त की? भगवान श्री रजनीश ने ऐसा क्या किया?

महावीर ने कहा, उनकी असीम अनुकंपा है कि उन्होंने अभी कुछ नहीं किया है। लेकिन तुम्हें पता नहीं है, पिछली बार जब उन्होंने यहां प्रवचन देना शुरु किया था, तो उन्हें चुप करने में और पूना भेजने में हमें 700 साल लग गए थे! धरती पर वे 700 प्रवचनमालाओं में करीब 10,000 हजार घंटे के लगभग 7000 व्याख्यान दे आए। दोबारा ऐसा खतरा मोल लेना उचित नहीं।

आषाढ़ माह की पूर्णिमा को ही गुरु पूर्णिमा उत्सव क्यों मनाया जाता है?

धर्म की भाषा को कविता के रूप में, उपमा के रूप में समझना। अध्यात्म की भाषा प्रतीकों और रूपकों की है। विज्ञान और गणित की तरह ठोस तथ्यों और सिद्धांतों की नहीं है।

आषाढ़ माह की पूर्णिमा को ही गुरु पूर्णिमा उत्सव मनाया जाता है--शिष्यों के लिए सबसे बड़े आनंद और उत्सव का पर्व होता है गुरु पूर्णिमा। गुरु ने जो दिया है, उस अलौकिक ज्ञान के लिए अपने अहोभाव प्रगट करने का त्यौहार है। आषाढ़ की पूर्णिमा को ही यह उत्सव क्यों मानाया जाता है? ओशो ने बताया कि परमात्मा है सूर्य जैसा, उसकी तरफ तुम आंख न उठा सकोगे। सीधे देखना संभव नहीं। लेकिन गुरु है चांद जैसा। यद्यपि वह सूरज के प्रकाश को ही परावर्तित करता है, लेकिन तब रोशनी शीतल, मधुर और गृहण करने योग्य बन जाती है। शिष्य हैं आषाढ़ के काले बादलों की तरह, जो चांद के आसपास जमा हो गए हैं। इसलिए आषाढ़ की पूर्णिमा काव्यात्मक प्रतीक बन गई गुरु-शिष्य मिलन का।

सैद्धांतिक रूप से समझने ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक एवं प्रायोगिक रूप से अनुभव करने के लिए ओशो फ्रेगरेंस के इस शिविर में भाग लीजिए— "गुरु पूर्णिमा उत्सव"

गुरु को त्रिदेव से भी ऊपर पार-ब्रह्म क्यों कहते हैं? और आषाढ़ माह में गुरु पूर्णिमा मनाने के पीछे क्या रहस्य है?

गुरु पूर्णिमा के रहस्यः ओशो

गुरु पूर्णिमा, गुरु को सम्मान में समर्पित पावन अवसर, आध्यात्मिक अभ्यास में गहरा महत्व रखता है। "गुरु" के लिए अंग्रेजी में कोई समानार्थी शब्द नहीं है। शिक्षक यानी गुरु नहीं होता है। शिक्षक कुछ सिखाता है, अपने छात्रों के साथ अपने बौद्धिक ज्ञान को साझा करता है। वह उनकी स्मृति, तार्किक क्षमता और दिमाग की जानकारियों को को बढ़ाता है। गुरु इसके विपरीत एक स्थिति बनाता है जहां शिष्यों का मन चुप हो जाता है। ध्यानी अवस्था में, सभी बौद्धिक क्रियाएं थोड़ी देर के लिए रुक जाती हैं। निर्विचार जागरूकता घटती है, गहन शांति और दिव्य आनंद की अनुभूति के संग।

क्रिश्चियन त्रिमूर्ति की तरह, हिंदू धर्म में त्रिमूर्ति की एक अवधारणा है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश शामिल हैं। ये तीन देवता उत्पादक, संचालक और विनाशक के रूप में काम करते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि 'गॉड' शब्द का तीन कार्यों का संक्षेप रूप है। गुरु को तीनों देवताओं का इकट्ठा रूप माना जाता है। यह उपमा आध्यात्मिक यात्रा के विभिन्न पहलुओं का प्रतीक है। जैसे ही खोजी इन तीन चरणों से आगे बढ़ते हैं, वे अपने भीतर एक रूपांतरण का अनुभव करते हैं। सबसे पहले, गुरु शिव के रूप में कार्य करते हुए शिष्य के अहंकार को नष्ट करते हैं। दूसरे, वे ब्रह्मा के रूप में काम करते हैं, शिष्य को नया जन्म देकर उसे द्विज बनाते हैं। तीसरे, वे विष्णु के रूप में काम करते हैं, नवजात शिष्य की देखभाल करते हैं और उसका पालन-पोषण करते हैं।

इसके आगे गुरु चौथे चरण के भी प्रतीक हैं, जिसे तुरिया कहा जाता है। खोजी शिष्य यह अनुभव करता है कि गुरुदेव एक साधारण व्यक्ति नहीं हैं, बल्कि दिव्यता की, भगवत्ता की साकार मूर्ति हैं। वे तीनों देवताओं से भी परे, परम ब्रह्मा हैं। तब गुरु शिष्य की आत्मा को प्रतिबिंबित करने वाला एक दर्पण बन जाता है। जब शिष्य गुरु के भीतर ईश्वर को अनुभव करते हैं, तो वे खुद में और फिर सर्वत्र परमात्मा को पहचान लेते हैं।

गुरु पूर्णिमा, आषाढ़ माह की पूर्णिमा को मनाई जाती है, जो शिष्य की अंधकार से प्रकाश की ओर यात्रा की प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है। चंद्रमा की मधुर एवं कोमल रौशनी के गुरु से मिलने वाले आध्यात्मिक ज्ञान की प्रतीक है। जैसे चंद्रमा सूरज की रौशनी को प्रतिबिंबित करता है, ठीक वैसे ही गुरु भी शिष्य द्वारा समझे जाने योग्य रूप में, परमात्मा को ही प्रकट करता है।

जिस तरह समुद्र का जल पीने योग्य नहीं है, उसी तरह विशाल, असीम, अनंत ईश्वर से सीधे मिलना खोजी में भय पैदा कर सकता है। सतत सूर्य को सीधे देखने से आंखों को हानि हो सकती है, लेकिन चंद्रमा की शीतल चांदनी देखना बहुत पोषणदायी होता है। हालांकि चंद्रमा सिर्फ सूर्य की रौशनी को प्रतिबिंबित कर रहा होता है। गुरु भी प्रभु-ऊर्जा को गृहण योग्य और पाचन योग्य रूप में बदलने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गुरु-कृपा के माध्यम से, खोजी दिव्य ज्ञान के आशीष को प्राप्त तथा स्वयं में समाविष्ट कर सकते हैं।

गुरु की सत्ता को पहचानकर, व्यक्ति अंततः अपने भीतर दिव्यता को पहचानता है। वह क्रमशः एक जिज्ञासु छात्र से प्रेमपूर्ण शिष्य में और अंततः भक्त में परिवर्तित होकर परब्रह्म की स्थिति तक पहुंचता है।

गुरु पूर्णिमा पर्व, गुरु द्वारा आध्यात्मिक यात्रा पर गहरे प्रभाव की याद दिलाता है। यह गुरु की कृपा के मार्गदर्शन में आत्म-साक्षात्कार के मार्ग पर निकलने के लिए प्रेरित करता है।

गुरु शब्द यह भी अर्थ रखता है कि जिसमें रहस्यमय आध्यात्मिक आकर्षण होता है। हिंदी में पृथ्वी के खिंचाव को गुरुत्वकर्षण कहा जाता है। गुरु यानी भारी, गहरा; उथला नहीं, हल्का नहीं। कबीर जैसे संतों ने कहा है कि अगर गुरु और ईश्वर साथ साथ मेरे सामने प्रकट हो जाएं, तो मैं अपने गुरु को नमन करूंगा, ईश्वर को नहीं। क्योंकि मेरे करुणामय गुरु ने मुझे ईश्वर को जानने का रास्ता दिखाया है। ईश्वर भी ऐसा नहीं कर सकता, केवल गुरु ही इस कार्य को कर सकता है।

इस पर्व के लिए वर्षा ऋतु की पूर्णिमा ही क्यों चुनी गई? चंद्रमा के श्वेत दिव्य गुण, ज्ञानी गुरु के प्रतिनिधि हैं, और मानसून के काले बादल उन अज्ञानी शिष्यों के प्रतीक हैं जो उसके चारों ओर इकट्ठे हो गए हैं। इसीलिए गुरु पूर्णिमा हेतु आषाढ़ माह की यह विशेष पूर्णिमा चुनी गई है।

धर्म, अध्यात्मवाद एवं भौतिकवाद

प्रश्न - अध्यात्मवादी नजरिया किसे कहते हैं?

कई सभ्यताएं, दार्शनिक परंपराएं, और विचारधाराएं भौतिकवाद के विपरीत मतभेद रखती हैं, जो अद्वैतवाद, आध्यात्मिकता, नैतिकता, और अंतर्ज्ञान के पक्ष पर जोर देती हैं। अध्यात्म शब्द आत्मा की खोज और तात्विक विचारधारा को संकेत करता है जो मानवीय अस्तित्व के पीछे आध्यात्मिक या आत्मिक तत्वों की महत्ता को मानती है। अध्यात्मवादी विश्वास करते हैं कि मानवीय जीवन और अनुभव सिर्फ भौतिक माला से परे होते हैं और आध्यात्मिकता, आत्मज्ञान, और दिव्यता की मूलभूतता पर आधारित होते हैं।

व्यक्ति की परम प्राथमिकता आत्मा के संयोग, उद्घाटन और संवेदनशीलता में होती है। मानवीय अनुभव और ज्ञान सिर्फ भौतिक और भौतिकतावादी परिधियों से सीमित नहीं होने चाहिए, बल्कि उसके पीछे अद्वैतता, आत्मा, आनंद, प्रज्ञान, और समरसता की उच्चता को समझना अनिवार्य है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, आध्यात्मिक अनुभव, संयोग, और आत्मीयता सिर्फ भौतिक वस्तुओं और भौतिक आवश्यकताओं के सीमित होने से परे होते हैं। अंतर्ज्ञान, पूर्णता, और चेतना का विकास महत्वपूर्ण है। अध्यात्मिकता की साधना व्यक्ति को अद्वैतता, प्रज्ञान, आत्म-समर्पण, और संयम की प्राप्ति में मदद करती हैं। यह सिद्धांत उच्च आदर्श, नैतिकता, और मानवीय समृद्धि को प्रशंसा करता है जो आत्मा के संयोग और समरसता के माध्यम से स्थापित होती है।

प्रश्न - भौतिकवादी नजरिया किसे कहते हैं?

संसार को ही सब कुछ मानने वाले तत्त्वावधानी, अद्वैतवादी या आध्यात्मिकता के विरोधी हो सकते हैं। यह सिद्धांत कहता है कि मानवीय जीवन और ब्रह्मांड की सबसे महत्वपूर्ण तथ्य और वास्तविकता सिर्फ और सिर्फ भौतिक वस्तुओं में पाई जाती है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, मानवीय जीवन का सबकुछ शरीर, मस्तिष्क, भोजन, आवास, सम्पत्ति, भोग, और इससे संबंधित भौतिक आवश्यकताओं में संकुचित होता है।

भौतिकवादी सिद्धान्त द्वारा विश्व की सृजनशीलता, मनोविज्ञान, आत्मा, दिव्यता और अदृश्य वास्तविकता को अस्वीकार किया जाता है। यह मानवीय अनुभव और ज्ञान को सिर्फ भौतिक घटकों और संयोगों के परिणाम के रूप में मानता है। इसे विवरणशीलता, वैज्ञानिकता, और प्रमाणबाद की एक रूपांतरण माना जा सकता है।

प्रश्न - क्या अध्यात्मवाद और भौतिकवाद का समन्वय संभव है?

अध्यात्मवाद और भौतिकवाद दो भिन्न दृष्टिकोणों या विचारधाराओं को प्रतिष्ठित करते हैं। इन दोनों के बीच एक सम्पूर्ण समन्वय स्थापित करना या समन्वय स्थापित करने का प्रयास करना कठिन हो सकता है, क्योंकि वे आपस में विभिन्न प्रकार के वाद-विवाद करते हैं। भौतिकवाद सिद्धान्त विश्व को भौतिक वस्तुओं, उपग्रहों, शक्तियों और नियमों के माध्यम से समझने और वर्णन करने की कोशिश करता है। यह मानवीय जीवन को वस्तुगत और विज्ञानिक मानवीय संघर्षों और प्राकृतिक नियमों के साथ सीमित करने का प्रयास करता है। अध्यात्मवाद सिद्धान्त उच्चता, आत्मा, आनंद, और अद्वैतता की महत्ता को मानता है। यह मानवीय जीवन और अनुभव को भौतिकता और भौतिक आवश्यकताओं से परे स्थान देने की कोशिश करता है।

अगर हम इन दोनों को समन्वयित देखने की कोशिश करें, तो हम कह सकते हैं कि भौतिकवाद सामाजिक, आर्थिक, और वैज्ञानिक मामलों पर ध्यान केंद्रित करता है, जबकि अध्यात्मवाद आत्मा, मन, आनंद, और आध्यात्मिक तत्वों की प्राथमिकता पर ध्यान केंद्रित करता है। यह दोनों दृष्टिकोण अपनी अपनी महत्ता और परम्परागत स्वरूप से मान्यता प्राप्त हैं। ओशो के अनुसार इन दोनों के बीच एक समन्वय ढूँढना संभव है जो समग्र मानवीय अस्तित्व की अद्वैतता, भौतिक और आध्यात्मिक पहलुओं को मिलाने का प्रयास करता है। ओशो ने भौतिकवाद और आध्यात्मवाद के मध्य संतुलन बनाने की कोशिश की है ताकि व्यक्ति दुनियावी जीवन के साथ-साथ अपने आत्मिक उत्थान और परम सत्य की खोज में आगे बढ़ सके।

प्रश्न - ओशो की नजर में 'झोरबा दि बुद्धा' का क्या अर्थ है?

'झोरबा दि बुद्धा':— का अर्थ होता है झारेबा के समान भौतिकवादी और बुद्ध के समान आत्मज्ञानी। व्यक्ति को भीतर रूप से, बुद्धत्व के गुणों से, उज्ज्वलता से, स्वयं के आंतरिक ज्ञान से, शांति और आनंद से ओतप्रोत होना चाहिए और बाहरी रूप से स्वस्थ, सम्पन्न, सुविधापूर्ण और प्रेमपूर्ण जीवन जीना चाहिए। वस्तुतः चार पुरुषार्थ में प्रथम दो झोरबा के प्रतीक हैं और अंतिम दो बुद्ध की ओर संकेत करते हैं। ओशो के अनुसार पूरब और पश्चिम का, धन और ध्यान का, सुविधा और सुमाधि का मिलन होना चाीए तभी एक पूर्ण मनुष्य का जन्म संभव है।

अतीत में मानवीय सभ्यता दो खंडों में विभक्त रही है। आधी दुनिया शरीर को ही सब कुछ मानकर जीती रही, और आंतरिक शांति के खजाने से चूक गई। शेष आधी दुनिया आत्मा परमात्मा की खोज में समर्पित रही और बाहरी वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास से वंचित रह गई। माना कि बुद्ध, महावीर और शंकर ने चेतना के उत्कर्ष को स्पर्श कर लिया, किंतु देह की अवहेलना करके, धन और काम की उपेक्षा करके। उनके प्रभाव से हमारी संस्कृति का पतन हुआ। हजारों साल हम दीन-हीन और गुलाम रहे। पश्चिमी जगत के सम्मुख भिखारी की स्थिति में पहुंच गए।

मनुष्य का स्वर्णिम भविष्य

हम सबने अंधे-लंगड़े की कथा सुनी है जिन्होंने आपसी सहयोग द्वारा जंगल की आग से निकल सके। पूरी मनुष्य जाति उसी अवस्था में है। विज्ञान अंधा है, धर्म लंगड़ा है। विज्ञान के पास शक्ति है मगर सदुपयोग करने की दृष्टि नहीं है। धर्म के पास शांति है किंतु सफलता की मंजिल तक पहुंचने के लिए सृजन की शक्ति नहीं है। आज जरूरत है शक्ति और शांति के समन्वय की, तभी मनुष्य का स्वर्णिम भविष्य घटित हो सकता है।

अध्यात्मवाद और भौतिकवाद का समन्वय ही 'झोरबा दि बुद्धा' कहलाता है।

प्रश्न - धर्म का गहन अर्थ क्या है?

धर्म का गहन अर्थ है स्वभाव, स्वधर्म। जो हमें धारण किए है, वह धर्म है।

वेदांतिक और धार्मिक धारणाओं के अनुसार हर व्यक्ति का धर्म उसके स्वभाव और प्रकृति से जुड़ा होता है। स्वभाव व्यक्ति के विचारों, भावनाओं, गुणों, कर्मों, और प्रवृत्तियों का संकेत करता है। इसे व्यक्ति की अंतर्मन की मूल प्रकृति के रूप में भी देखा जा सकता है। जब व्यक्ति अपने स्वभाव के अनुसार चालन करता है और अपने स्वभाव के गुणों को विकसित करता है, तो उसे धर्म का पालन करने का अनुभव होता है।

इस सिद्धांत के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति का अलग-अलग स्वभाव होता है और उनके स्वभाव के अनुसार उन्हें अपने कर्तव्यों को पूरा करने का धर्म पालन करना चाहिए। व्यक्ति जब अपने स्वभाव को समझता है और उसे अपने जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त करता है, तब उसका जीवन समर्थ, प्रासंगिक और पूर्णतः जीवन्मुक्त हो जाता है।

धर्म व्यक्ति को उनके स्वभाविक धर्म की अनुसरण करने, स्वयं के गुणों का विकास करने, अपने कर्तव्यों को समझने और उन्हें पूरा करने की प्रेरणा देता है। यह धर्म के माध्यम से व्यक्ति को आत्मसात करता है और सच्ची सुख, समृद्धि और समाधान की प्राप्ति में मदद करता है।

प्रश्न - ओशो की दृष्टि में "वास्तविक धर्म" क्या है?

आत्म-स्मरण है वास्तविक धर्म--ओशो

आत्म-स्मरण की साधना से व्यक्ति अपने आंतरिक स्वभाव का, असली स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करता है। शांति, संतुलन, चेतना के संग एकात्मीयता, और अपनी आत्मा की अनुभूति होती है। आंतरिक स्थिरता, आनंद और स्व-बोध का अनुभव घटता है। आत्म स्मरण ही ध्यान है।

अक्सर ध्यान के नाम पर जप करने वाले, पूजा-प्रार्थना और भक्ति के नाम पर आत्म-विस्मरण खोजते हैं। किसी काल्पनिक भगवान में अपने को डुबाकर, अपने को खोकर, भुलाकर वे बड़े सुख का अनुभव करते हैं। वह सुख एकदम झूठा है।

ओशो के अनुसारः धर्म सेल्फ-फार्गेटफुलनेस नहीं, आत्म-विस्मरण नहीं है। धर्म है परिपूर्ण रूप से आत्म-स्मरण, सेल्फ-रिमेंबरिंग। स्वयं को भूल नहीं जाना है, स्वयं को उसकी परिपूर्णता में जान लेना है। स्वयं को उसकी समग्रता में पहचान लेना है। और ये दो बातें, ये दो दिशाएं बिलकुल ही विपरीत हैं।

प्रश्न - मोक्ष प्राप्ति के विभिन्न उपाय क्या हैं?

आध्यात्मिक साधना और उच्चतम आदर्शों के प्राप्ति को समर्पित उपाय मोक्ष उपलब्धि में मदद करते हैं, लेकिन व्यक्ति को इन्हें निष्ठा और साधना के साथ अपने जीवन में समाहित करने की आवश्यकता होती है। आत्मज्ञान प्राप्ति हेतु नीचे कुछ मुख्य उपायों का वर्णन किया गया हैः

1. सांख्य योगः आत्मज्ञान का प्राप्ति मोक्ष के लिए महत्वपूर्ण है। इसमें आपको अपने स्वयं को और आत्मा की स्वरूपता को समझना होगा। यह आपको ब्रह्म के साथ अभिप्रेत होने की अनुभूति कराता है और सांसारिक बंधनों से मुक्ति प्रदान करता है। आत्मज्ञान के लिए, ध्यान, मेधावीता, विचार और आध्यात्मिक अध्ययन का अभ्यास किया जाता है।

2. भक्ति योगः भक्ति योग में मोक्ष के लिए ईश्वर में पूर्ण श्रद्धा, भक्ति और समर्पण होता है। यह भक्ति और प्रेम के माध्यम से दिव्यता की प्राप्ति को प्रमाणित करता है। भक्ति योग के प्रमुख उपाय भजन, कीर्तन, पूजा, प्रार्थना, सत्संग और ईश्वर के नाम का जाप हैं।

3. कर्म योगः कर्म योग में मोक्ष के लिए कर्मों को धार्मिक भावना, निष्कामता और समर्पण के साथ किया जाता है। यह आपको दान, सेवा, समाजसेवा और यज्ञ के माध्यम से आदर्शों की प्राप्ति कराता है।

4. ज्ञान योगः ज्ञान योग में मोक्ष के लिए विचार, विवेक, तत्वज्ञान और सत्यानुभव का विकास किया जाता है। इसके माध्यम से आप अज्ञानता से मुक्त होकर आत्मा की स्वरूपता को अनुभव करते हैं। ज्ञान योग का अभ्यास स्वाध्याय, वेदांत श्रवण, आत्म-विचार और गुरु के संदेशों का पालन करने के माध्यम से किया जाता है।

ओशो के अनुसार उपरोक्त 4 उपायों में औषधि एक ही है--साक्षी भाव। *लेकिन इस दवा को गृहण करने योग्य बनाने के लिए पानी, दूध, शहद, शरबत आदि में मिश्रित कर दिया जाता है। तब वह साधक की रुचि के मुताबिक आकर्षक हो जाती है। साक्षी को कर्म, विचार या भाव के संग जोड़ने से क्रमशः कर्मयोग, ज्ञानयोग या भक्तियोग का*

मिश्रण बन जाता है। कोई जिज्ञासु सीधे ही साक्षी रूपी औषधि लेने को तैयार हो तो कुछ मिलावट करने की जरूरत नहीं है, उसी का नाम सांख्ययोग है।

प्रश्न - चार पुरुषार्थ क्या हैं?

हिंदू धर्म में मान्यता के आधार पर व्यक्ति के जीवन के चार मुख्य आदर्श होते हैं। इन्हें अर्थ, काम, धर्म, और मोक्ष के नाम से जाना जाता है। चार पुरुषार्थ एक संतुलित जीवन व्यतीत करने का आदर्श प्रस्तुत करते हैं, जहां व्यक्ति अपने धार्मिक, आर्थिक, कामिक और मोक्षिक आदर्शों को समान महत्व देते हुए पूर्णता और आनंद की प्राप्ति करता है। अर्थ साधन है काम का। धर्म साधन है मोक्ष का। अर्थ के द्वारा इस संसार में लौकिक कामनाओं की पूर्ति होती है। धर्म के द्वारा पारलौकिक कामना अर्थात मोक्ष प्राप्ति होती है। इसका मतलब हुआ कि दो साध्य हैंः काम और मोक्ष। दो उनके साधन हैंः धन और धर्म। इसीलिए तो धन को साधन कहते हैं। धर्म का सार है ध्यान, वह भी उपाय है, विधि है, मार्ग है। उसकी मंजिल है मोक्ष।

1. अर्थः व्यक्ति को अपने जीवन में आवश्यक आर्थिक सुख और सामर्थ्य की प्राप्ति करने के लिए कार्य करना चाहिए। इसमें संपत्ति, स्थान, सम्मान, सुरक्षा और उच्च सामाजिक स्थिति की प्राप्ति शामिल होती है। अर्थ व्यक्ति को आवश्यक साधनों की प्राप्ति के माध्यम से आत्मसंतुष्टि और सुरक्षा के अनुभव के लिए प्रेरित करता है।

3. कामः काम का शाब्दिक अर्थ होता है इच्छाएं, कामनाएं, वासनाएं। भोगों, सुखों, संतुष्टि, सांत्वना और तृप्ति की प्राप्ति। मनोरंजन, सौंदर्य, प्रेम, संगीत, कला और अन्य भोगों की प्राप्ति की इच्छाएं।

3. धर्मः व्यक्ति के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों, कर्तव्यों, नियमों और आचारों का पालन करना मानव धर्म है। धर्म मनुष्य को सही और न्यायसंगत कार्य करने, दया और सेवा करने, सत्य और ईमानदारी से रहने, और जीवन में उच्चतम आदर्शों की प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है।

4. मोक्षः मोक्ष का अर्थ होता है 'मुक्ति या परम स्वतंत्र हो जाना'। यह व्यक्ति के आत्मा की मुक्ति, मोक्ष और दिव्यता की प्राप्ति को प्राथमिक मानता है। मोक्ष मानवीय दुःखों, बंधनों और संसारिक बंधनों से मुक्ति के लिए प्रेरित करता है। इसमें आत्मज्ञान, आध्यात्मिक साधना, मोक्ष के लिए साधना करना और अंतिम आदर्शों की प्राप्ति शामिल है।

आध्यात्मिक ज्ञान कितने प्रकार का होता है? "केवल ज्ञान" क्या होता है?

आध्यात्मिक ज्ञान को तीन तलों पर समझ सकते हैं। आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान तथा निर्वाणज्ञान। ओशो की पुस्तक 'जिन खोजा तिन पाइयां' में सात शरीरों का वर्णन है। पांचवें, छटवें एवं सातवें शरीर के आयाम में ये क्रमशः घटित होते हैं।

हमारे देश में 108 उपनिषद हैं। उनमें एक प्रमुख है--'कैवल्य उपनिषद'। ओशो ने इस ग्रंथ की विस्तृत व्याख्या की है और के ऋषि द्वारा दिए संकेतों पर व्यावहारिक साधना सिखाई है। कैवल्य का भावार्थ है जहां केवल मैं ही मैं रह जाउं। दूसरा खो जाए। इसे ही केवल-ज्ञान का अनुभव कहते हैं। इसे जानकर ही ऋषि ने कहा है--अहं ब्रह्मास्मि। इसी को जानकर मंसूर ने पुकारा--अनलहक, मैं सत्य हूं। इन वचनों में अहंकार की उदघोषणा नहीं है। वस्तुतः अहंकार के विलीन हो जाने पर ही यह दिव्य अनुभूति होती है।

जहां दृश्य और द्रष्टा न बचें, सिर्फ आलोक-दर्शन रह जाए। श्रव्य और श्रोता न रहें, सिर्फ ओंकार-संगीत रह जाए। ज्ञाता और ज्ञेय खो जाएं, केवल ज्ञान रहे, वह कैवल्य ज्ञान है। जहां सब प्रकार के द्वैत विदा हो जाएं, अद्वैत शेष रह जाए।

सैद्धांतिक रूप से समझने ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक एवं प्रायोगिक रूप से अनुभव करने के लिए ओशो फ्रेगरेंस के इस शिविर में भाग लीजिए— "कैवल्य साधना शिविर"

ईश्वर दर्शन (मिलन) के लिए कुछ आवश्यक बातें क्या हैं? क्या इन्हें कर पाना बहुत मुश्किल है?

सर्वप्रथमः
ईश्वर के दर्शन संबंधी गलतफहमी दूर कीजिए।
ईश्वर कोई वस्तु यानी ऑब्जेक्ट नहीं है जिसे देखा जा सके।
ईश्वर स्वयं का होना यानी सब्जेक्ट है जो कि देखने वाला है।
संक्षेप में कहें तो ईश्वर दृश्य नहीं बल्कि दृष्टा है।
हमारे भीतर कौन है जो जान रहा है?
वह अंतर्यामी चेतना ही परमात्मा है।
महावीर कहते हैं आत्मा ही परमात्मा है।
इसलिए धर्म में उत्सुक हुए जिज्ञासु को
इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि
प्रभु के दर्शन नहीं होते।
जो दर्शन कर रहा है वही प्रभु है।
वह ज्ञात नहीं होता, वह स्वयं ज्ञाता है।
अब दूसरी बातः
प्रभु मिलन बिल्कुल सरल है, भावार्थ है आत्म-बोध।
स्वयं को जानने से सुगम भला और क्या होगा?
शर्त बस इतनी सी है कि अपनी बहिर्गामी जीवन ऊर्जा को
कुछ देर के लिए अंतर्गामी कर लो और खुद से मिल लो।
इसी का नाम ध्यान है।
इसके लिए न त्याग तपस्या जरूरी है, न व्रत उपवास
न मंदिर मस्जिद, न पूजा पाठ।

अध्यात्म, मोक्ष और ईश्वर दर्शन के बारे में कुछ ग़लतफ़हमी क्या हैं? अपने अनुभव के आधार पर क्या आप इस विषय पर कुछ प्रकाश डाल सकते हैं तथा निजी तौर पर लोगों को गाइड कर सकते हैं?

ईश्वर कोई वस्तु यानी ऑब्जेक्ट नहीं है जिसे देखा जा सके।
ईश्वर स्वयं का होना यानी सब्जेक्ट है जो कि देखने वाला है।
संक्षेप में कहें तो ईश्वर दृश्य नहीं बल्कि दृष्टा है।

हमारे भीतर कौन है जो जान रहा है?
वह अंतर्यामी चेतना ही परमात्मा है।
महावीर कहते हैं आत्मा ही परमात्मा है।
इसलिए धर्म में उत्सुक हुए जिज्ञासु को
इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि
प्रभु के दर्शन नहीं होते।
जो दर्शन कर रहा है वही प्रभु है।
वह ज्ञात नहीं होता, वह स्वयं ज्ञाता है।

क्या नूतन पाश्यात्य भौतिकी और प्राचीन पूर्वी रहस्यवाद के बीच समानताएं हैं?

नवीन पाश्यात्य भौतिकी और प्राचीन पूर्वी रहस्यवाद के बीच समानताओं की खोज की अनूठी तार्किक प्रस्तुति है—"भौतिकी का ताओ"—भौतिक विज्ञानी फ्रिटजॉफ कैपरा द्वारा 1975 में लिखी गई यह पुस्तक, संयुक्त राज्य अमेरिका में एक बेस्टसेलर है, जिसका अनुवाद 23 भाषाओं में हो चुका है।

हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म और ताओवाद के सिद्धांतों से आधुनिक खोजों की समानताओं को दिखाने के लिए गहन बौद्धिक विश्लेषण कैपरा ने पेश किया है। विश्व संबंधी आधुनिक क्वांटम भौतिकी के गणितीय दृष्टिकोण का और बुद्ध, कृष्ण, लाओत्से के रहस्यमय दर्शन का एकीकरण सुस्पष्ट नजर आता है।

कैपरा ने वर्नर हाइजेनबर्ग के साथ अपने विचारों पर चर्चा की, जैसा कि उन्होंने निम्नलिखित साक्षात्कार में उल्लेख किया है: *मैं तब 1972 में इंग्लैंड में रहता था, और मैं म्यूनिख में कई बार उनसे मिलने गया और उन्हें अध्याय दर अध्याय पूरी पांडुलिपि दिखाई। वह बहुत रुचि रखते थे और बहुत खुले मन वाले व्यक्ति थे। उन्होंने कहा कि वह इन समानताओं से अच्छी तरह वाकिफ हैं। जब वह क्वांटम सिद्धांत पर काम कर रहे थे, तो वह व्याख्यान देने के लिए भारत गए और टैगोर के अतिथि हुये। उन्होंने भारतीय दर्शन के बारे में टैगोर के साथ बहुत बातें कीं।*

हाइजेनबर्ग ने मुझे बताया कि इन वार्ताओं ने उन्हें भौतिकी के अनुसंधानों में बहुत सहायता की, क्योंकि पता चला कि क्वांटम भौतिकी में जन्मे ये नए विचार पागलपन के लक्षण नहीं हैं। वास्तव में, कभी एक पूरी संस्कृति थी जो बहुत समान विचारों पर आधारित थी। हाइजेनबर्ग ने कहा कि यह जानकारी उनके लिए बहुत बड़ी मदद सिद्ध हुई।

हाइजेनबर्ग को मैंने बताया कि आधुनिक भौतिकी के सभी सिद्धांतों में दो बुनियादी विषय हैं, जो सभी रहस्यमयी परंपराओं के दो आधार विषय भी हैं- पहला, सभी घटनाओं की मौलिक परस्पर संबंध व अन्योन्याश्रितता और दूसरा, वास्तविकता की आंतरिक रूप से गतिशील प्रकृति।

पांडुलिपि की मेरी लंबी प्रस्तुति के अंत में हाइजेनबर्ग ने कहा: 'मूल रूप से, मैं आपके साथ पूर्णतः सहमत हूं।'

नील्स बोहर को भी ऐसा ही अनुभव हुआ था जब वह चीन गए थे। जब बोहर को 1947 में नाइटहुड की उपाधि दी गई थी, तब उन्होंने यिन-यांग प्रतीक को अपनाया। निश्चित ही वह पूर्वीय प्रभावों का परिणाम था।

'भौतिकी का ताओ' के बाद उसी शैली की अन्य पुस्तकें जैसे द हिडन कनेक्शन, द टर्निंग पॉइंट और द वेब ऑफ लाइफ आईं, जिसमें कैपरा ने इस तर्क को और भी विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया कि पूर्वी रहस्यवाद एवं पश्चिमी वैज्ञानिक निष्कर्ष अंतर्संबंधित हैं, और रहस्यवाद के पास कुछ वैज्ञानिक चुनौतियों से निपटने के लिए आवश्यक भाषाई तथा दार्शनिक उपकरण भी हैं।

निष्कर्षः नवीन और प्राचीन, नूतन और पुरातन नहीं, सत्य तो सनातन होता है। चाहे कोई बाहरी पदार्थ व प्रकृति के सत्य को खोजे चाहे स्वयं की भीतरी चेतना के सत्य को खोजे, अंततः एक ही सत्य उपलब्ध होता है। दोनों पक्षों और पहलुओं से देखा गया सत्य ही पूर्ण सत्य हो सकता है। आंशिक सत्य, वस्तुतः सत्य नहीं हो सकता। अर्धसत्य का मतलब ही है कि उसमें आधा झूठ मौजूद है।

आपने वह कहानी सुनी होगी जिसमें अंधे-लंगड़े दोनों मिल गए तो जंगल की भयावह आग से बच निकले। मनुष्यता आज वैसे ही तांडव अग्नि-जाल में उलझी है। अकेला अध्यात्म लंगड़ा है, अकेला विज्ञान अंधा है। एक के पास दृष्टि है, मगर चलने की ताकत नहीं है। दूसरे के पैर मजबूत हैं मगर दिशा-ज्ञान नहीं है। आंख और पैर--दोनों ही जरूरी है।

ओशो कहते हैं कि ध्यान और विज्ञान दोनों का संगम अनिवार्य है। विज्ञान से धन-धान्य और शक्ति मिलती है। अध्यात्म से ध्यान, प्रीति और शांति मिलती है। पहला मनुष्य को सुविधा देता है, दूसरा समाधि देता है। पहला जीवन के साधन जुटाता है, दूसरा जीवन का अर्थ, अभिप्राय और लक्ष्य देता है। पहला मार्ग है, दूसरा मंजिल है।

ओशो की 'झोरबा द बुद्धा' वाली बात को ही कैपरा ने इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है--'विज्ञान को रहस्यवाद की आवश्यकता नहीं है और रहस्यवाद को विज्ञान की आवश्यकता नहीं है। लेकिन हम इंसानों को दोनों की जरूरत है।'

विस्तार से जानने के लिए पढ़िए—

- "विज्ञान, धर्म और कला"
- "पूर्व का धर्म : पश्चिम का विज्ञान"
- "The Tao of Physics"

क्या ओशो को ज्यादा सुनने से आप धर्म को मानना कम कर देते हैं?

जी नहीं। किंतु ओशो को सुनकर इतनी समझ आ जाती है कि बाहरी क्रियाकांडों से, मंदिर-मस्जिद जाने और तीर्थयात्रा करने से परमात्मा नहीं मिलता। आंतरिक रूपांतरण से प्रभु-मिलन होता है। इसलिए धर्म का बाहरी रूप कम महत्वपूर्ण और भीतरी रूप अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। नासमझी छूटती है, धर्म नहीं छूटता। समझदारी से उपयोग करने पर निश्चित ही बाहरी बातें भी सहयोगी हो सकती हैं। ओशो कहते हैं--

बाह्य अंतस को बदल तो नहीं सकता है, लेकिन वह सहयोग दे सकता है या बाधा दे सकता है। बाह्य वह परिस्थिति पैदा कर सकता है जिसमें आंतरिक रूपांतरण की घटना ज्यादा सरलता से घट सके। स्मरण रखने की बात यह है कि बाहरी बदलाहट आंतरिक रूपांतरण नहीं है। तुमने अगर सब कुछ कर लिया और परिस्थिति भी अनुकूल हो तो भी संभव है कि आंतरिक रूपांतरण न हो। परिस्थिति आवश्यक है, सहयोगी है, लेकिन वह रूपांतरण नहीं है।

और जो लोग बाह्य में फंस जाते हैं वे व्यर्थ बहुत समय गंवाते हैं। बाह्य बहुत बड़ा है। तुम उसमें जन्मों—जन्मों तक बदलाहट करते रह सकते हो और तुम्हें कभी संतोष नहीं होगा, सदा कुछ न कुछ बदलने को बाकी रहेगा। क्योंकि जब तक अंतस नहीं बदलता है, बाह्य कभी बिलकुल ठीक नहीं हो सकता। तुम उसे कितना भी बदलो, रंगरोगन करो, सुंदर करो, लेकिन तुम कभी तृप्त अनुभव नहीं करोगे, तुम कभी उस स्थिति में नहीं होगे जहां तुम्हें महसूस हो कि अब सब तैयार है। इस तरह अनेक लोगों ने अपना जीवन गंवाया है।

अगर तुम्हारा चित्त बाह्य से ग्रस्त हो जाए— भोजन से, कपड़ों से, आचरण से—तो उनसे बड़ी बाधा हो सकती है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि उनकी उपेक्षा करो। नहीं, मैं यह कह रहा हूं कि उनसे ग्रस्त मत हो जाओ, वे सहयोगी हो

सकते हैं। लेकिन अगर तुम्हारा चित्त उनसे ग्रस्त हो गया तो वे भारी अवरोध सिद्ध हो सकते हैं। तब तुम उनमें ही उलझ जाते हो, तब तुम आंतरिक रूपांतरण को स्थगित कर रहे हो। और तुम बाह्य को कितना भी बदलते रहो, अंतस उससे स्पर्शित भी नहीं होता है। अंतस वही का वही रहता है।

तुमने एक पुरानी भारतीय कहानी सुनी होगी। पंचतंत्र में कथा है कि एक चूहा बिल्ली से बहुत डरता था; वह सदा भय और चिंता में डूबा रहता था। उसे नींद नहीं आती थी, नींद में भी वह बिल्ली का ही सपना देखता था और कांपने लगता था। एक जादूगर ने उस पर तरस खाकर उसे बिल्ली बना दिया। बाह्य बदल गया। लेकिन तुरंत बिल्ली के भीतर का चूहा कुत्ते से डरने लगा। चिंता वही रहा,सिर्फ विषय बदल गया। पहले बिल्ली चिंता का विषय थी, अब कुत्ता हो गया। कांपना जारी रहा,संताप बना रहा,अभी भी सपने भय के ही आते रहे।

तो जादूगर ने उसे बिल्ली से कुत्ता बना दिया। लेकिन कुत्ते को तुरंत बाघ के भय ने पकड़ लिया। क्योंकि उसके भीतर का चूहा तो वही था; वह नहीं बदला था। उसका शरीर बदला था, बाह्य भर बदला था। वही चिंता, वही रोग, वही भय, सब ज्यों का त्यों रहा। जादूगर ने कुत्ते को बाघ बना दिया; लेकिन अब उसके भीतर का चूहा शिकारी से डरने लगा।

तो जादूगर ने चूहे से कहा 'पुन: मुषको भव। फिर चूहा ही हो जा। क्योंकि मैं तुम्हारे शरीर बदल सकता हूं; पर मैं तुम्हें नहीं बदल सकता। तुम्हारा दिल चूहे का है, मैं क्या कर सकता हूं?'

चूहे का दिल! तुम बाह्य को कितना भी बदलते रहो, चूहे का दिल वही का वही रहेगा। और वह ही समस्या पैदा करता है। रूप—रंग बदल जाता है, लेकिन वास्तविकता नहीं बदलती। और इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम बिल्ली से डरते हो या कुत्ते से डरते हो या बाघ से डरते हो? प्रश्न यह नहीं है कि तुम किससे डरते हो, प्रश्न यह है कि तुम डरते हो।

मेरा जोर इस बात पर है कि तुम्हें सावधान रहना है कि कहीं तुम्हारा बाह्य प्रयत्न आंतरिक रूपांतरण का सब्स्टीटयूट न बन जाए; तुम बाह्य को ही सब कुछ न मान लो। यह एक बात। उससे जो सहायता ले सको वह लो। सम्यक भोजन अच्छा है; लेकिन चौबीस घंटे भोजन की चिंता में ही लगे रहना मूढ़ता है। सम्यक आचरण ठीक है, लेकिन उससे ग्रस्त होना मानसिक रुग्णता है। किसी भी चीज की अति अच्छी नहीं है।

भारत में साधुओं के कई संप्रदाय हैं जो भोजन के ही पीछे पड़े रहते हैं। दिन भर वे इसी फिक्र में लगे रहते हैं कि क्या खाना चाहिए और क्या नहीं खाना चाहिए, किसका बनाया भोजन लेना चाहिए और किसका बनाया नहीं लेना चाहिए। एक बार मैं एक संन्यासी के साथ यात्रा कर रहा था। वह सिर्फ गाय का दूध लेता था और वह भी सफेद गाय का दूध। अन्यथा वह भूखा रह जाता था। अब यह व्यक्ति विक्षिप्त है।

तो स्मरण रहे, अंतस महत्वपूर्ण है, अर्थपूर्ण है। बाह्य सहयोगी है, अच्छा है; लेकिन तुम्हें उसमें ही अटक नहीं जाना है। बाह्य इतना महत्वपूर्ण न हो जाए कि तुम अंतस को भूल जाओ। अंतस महत्वपूर्ण रहना चाहिए, केंद्रीय रहना चाहिए। और बाह्य को, यदि आसानी से संभव हो, तो मदद के लिए बदलना चाहिए। उसकी बिलकुल उपेक्षा मत करो। उपेक्षा करने की जरूरत नहीं है। क्योंकि बाह्य भी अंतस का ही हिस्सा है। बाह्य अंतस का विरोधी नहीं है विपरीत नहीं है। वह तुम पर बाहर से थोपा हुआ नहीं है, वह भी तुम्हारा हिस्सा है। लेकिन अंतस केंद्र है, बाह्य परिधि है। तो परिधि को, चारदीवारी को उतना महत्व दो जितना जरूरी है; लेकिन चारदीवारी घर नहीं है। बाह्य की फिक्र करो, लेकिन उसके पीछे पागल मत होओ।

ओशो को दुनिया में अन्य संतों और विचारकों से अलग और विशिष्ट बनाने वाली तीन प्रमुख बातें हैं: उनका समकालीन और वैज्ञानिक दृष्टिकोण, परंपराओं को चुनौती देने वाला विद्रोही नजरिया, और जीवन को संपूर्णता और आनंद के साथ जीने का संदेश। ये पहलू न केवल उनकी शिक्षाओं को अलग बनाते हैं, बल्कि उन्हें एक क्रांतिकारी और प्रेरणादायक मार्गदर्शक के रूप में स्थापित करते हैं।

समकालीन दृष्टिकोण और विज्ञान पर आधारित आध्यात्मिकता

ओशो का दृष्टिकोण पारंपरिक संतों और धार्मिक नेताओं से बिल्कुल अलग है, क्योंकि उन्होंने अध्यात्म और ध्यान को किसी विशेष धर्म या पंथ का हिस्सा नहीं माना। उनके अनुसार, ध्यान एक सार्वभौमिक और वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो हर इंसान के लिए उपयोगी है, चाहे वह किसी भी धर्म, जाति, या संस्कृति का हो। उन्होंने आधुनिक जीवन की जटिलताओं को समझते हुए ध्यान की पारंपरिक विधियों में सुधार किया।

ध्यान का नवाचार: ओशो ने ध्यान को व्यावहारिक और प्रभावी बनाने के लिए डायनामिक ध्यान और कुंडलिनी ध्यान जैसी विधियां विकसित कीं। ये विधियां विशेष रूप से आधुनिक जीवन के तनावग्रस्त मनुष्य के लिए उपयुक्त हैं।

विज्ञान और अध्यात्म का समागम: ओशो ने विज्ञान और अध्यात्म को पूरक बताया। उनके अनुसार, विज्ञान बाहरी जगत की खोज करता है, जबकि अध्यात्म आंतरिक। दोनों का संयोजन मनुष्य को समग्रता में जीने का रास्ता दिखा सकता है। उनका यह दृष्टिकोण आधुनिक युग में विज्ञान और अध्यात्म के बीच की खाई को पाटने में सहायक है।

परंपराओं को चुनौती देने वाला विद्रोही दृष्टिकोण

ओशो ने रूढ़िवादी धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक परंपराओं को खुली चुनौती दी।

धर्म और ईश्वर की नई व्याख्या: उन्होंने धर्म को बाहरी कर्मकांडों से परे एक आंतरिक अनुभव बताया। उनके अनुसार, ईश्वर किसी व्यक्ति की कल्पना मात्र है, जबकि सत्य की खोज आत्म-जागरूकता और ध्यान के माध्यम से होती है।

स्वतंत्रता की वकालत: ओशो का मानना था कि हर व्यक्ति को सत्य को अपने अनुभव के आधार पर समझने और जीने का अधिकार है। उनका विद्रोही दृष्टिकोण उन्हें न केवल परंपराओं से अलग करता है, बल्कि एक क्रांतिकारी विचारक के रूप में स्थापित करता है।

जीवन को संपूर्णता और आनंद से जीने का संदेश

ओशो ने आध्यात्मिकता और जीवन के आनंद को एक साथ जोड़ा। वे न तो भौतिक जीवन के विरोधी थे और न ही सांसारिकता से पलायन के पक्षधर।

'ज़ोरबा द बुद्धा' का विचार: उन्होंने सिखाया कि मनुष्य को ज़ोरबा (जो भौतिक जीवन का आनंद लेता है) और बुद्ध (जो ध्यान और शांति में लीन रहता है) के बीच संतुलन बनाना चाहिए।

प्रेम और सहजता: ओशो ने प्रेम, आनंद, और सहजता को आध्यात्मिकता का अभिन्न हिस्सा बताया। उन्होंने परंपरागत कठोरता और तपस्या को खारिज करते हुए आनंदमय और प्रेमपूर्ण जीवन का समर्थन किया।

निष्कर्ष:

ओशो की शिक्षाएं उन्हें अन्य संतों और विचारकों से अलग बनाती हैं, क्योंकि उनका दृष्टिकोण गहन वैज्ञानिक, विद्रोही और आनंदमय जीवन की वकालत करता है। उन्होंने धर्म, समाज और परंपराओं की रूढ़ियों को खुलकर चुनौती दी, लेकिन उनका यह विद्रोह केवल विरोध तक सीमित नहीं था। उनके विचार गहरी अंतर्दृष्टि और आधुनिक समस्याओं के व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करते हैं।

ओशो का ध्यान और स्वतंत्रता पर आधारित दृष्टिकोण, तनाव और जटिलताओं से भरी आधुनिक जीवनशैली के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। वे मानते थे कि मनुष्य तब तक आनंदमय जीवन नहीं जी सकता, जब तक वह अपनी आंतरिक बेड़ियों और समाज द्वारा थोपी गई शर्तों से मुक्त नहीं होता। उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण ध्यान को एक व्यावहारिक साधन के रूप में प्रस्तुत करता है, जो न केवल मानसिक शांति प्रदान करता है, बल्कि आत्मा की गहराई तक जाने का मार्ग भी दिखाता है। आज लाखों लोग उनकी शिक्षाओं से प्रेरणा लेकर ध्यान को अपनाकर तनाव और अशांति से मुक्त हो रहे हैं। ओशो का संदेश हमें सिखाता है कि आनंद केवल बाहरी सफलता में नहीं, बल्कि आंतरिक स्वतंत्रता और साक्षी भाव में छिपा है। यही उनकी शिक्षाओं को चिरस्थायी और अद्वितीय बनाता है।

धर्मों के बीच विवाद नहीं, संवाद
वसुधैव कुटुंबकम्: घृणा से प्रेम की ओर एक यात्रा

सभी धर्मों के सम्मान को लेकर दुनिया को एक ऐसा संदेश दिया जा सकता है जो एकता, सहिष्णुता और सामंजस्य को बढ़ावा देता है। ओशो जैसे विचारकों के दृष्टिकोण से प्रेरणा लेकर, यह संदेश कुछ इस प्रकार हो सकता हैः

सार को पहचानें, रूप से ऊपर उठें: सभी धर्मों का मूल उद्देश्य एक ही हैक--प्रेम, शांति, और आत्म-ज्ञान। हर धर्म अपनी भाषा, प्रतीकों और परंपराओं के माध्यम से उसी सत्य को व्यक्त करता है। हमें इन बाहरी रूपों को समझते हुए उनके भीतर के सार को पहचानने का प्रयास करना चाहिए।

विवाद नहीं, संवाद को अपनाएं: धर्मों के बीच मतभेद स्वाभाविक हैं, क्योंकि ये अलग-अलग समय और सांस्कृतिक संदर्भों में उभरे हैं। इन मतभेदों को विभाजन का कारण नहीं, बल्कि संवाद और समृद्ध विचारों का माध्यम मानना चाहिए।

धर्म को व्यक्तिगत अनुभव बनाएं: धर्म को किसी भी प्रकार की प्रतिस्पर्धा, श्रेष्ठता, या बाहरी प्रदर्शन का माध्यम न बनाएं। इसे अपने आंतरिक अनुभव और जीवन को बेहतर बनाने का साधन बनाएं।

जीवन को धर्म से ऊपर रखें: किसी भी धर्म का असली संदेश शांति, प्रीति, भक्ति, मुक्ति और मानवता की सेवा करना है। यदि धर्म का पालन मानवता को पीड़ा पहुंचाने का कारण बनता है, तो हमें अपनी समझ और दृष्टिकोण को बदलने की आवश्यकता है।

सम्मान का अर्थ सहमति नहीं: सभी धर्मों का सम्मान करने का मतलब यह नहीं है कि आप उनकी हर बात से सहमत हों। सम्मान का अर्थ है उनके अस्तित्व को स्वीकार करना और उनके अनुयायियों की आस्था को महत्व देना। तार्किक चिंतन-मनन, निजी आत्म-अनुभूति और बौद्धिकता का महत्व अंगीकार करें तो क्रमशः एक धार्मिकता का सूर्योदय हो सकता है। जैसे गणित या विज्ञान एक है, वैसे ही सच्ची धार्मिकता भी एक ही हो सकती है।

महत्व: शांति और सह-अस्तित्वः इस दृष्टिकोण से समाज में टकराव और घृणा के स्थान पर सह-अस्तित्व और सहयोग को बढ़ावा मिलेगा। वैश्विक समझः धर्मों के प्रति सहिष्णुता अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सामंजस्यपूर्ण संबंधों का आधार बन सकती है। आध्यात्मिक विकासः दूसरों की मान्यताओं का सम्मान करने से आपकी अपनी आध्यात्मिकता और परिपक्वता बढ़ती है।

वसुधैव कुटुंबकम्: आज की दुनिया में राष्ट्रों, जातियों, और धर्मों के नाम पर प्रचलित राजनीति अक्सर घृणा और विभाजन को बढ़ावा देती है। ऐसी राजनीति का आधार भय, असुरक्षा और दूसरों को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति होती है। यह न केवल समाजों को तोड़ती है, बल्कि मानवता के लिए एक शांतिपूर्ण और प्रेमपूर्ण भविष्य का सपना भी

धुंधला कर देती है। ओशो जैसे विचारकों का मानना है कि जब तक हम इन घृणा और विभाजन की जड़ों से ऊपर नहीं उठते, तब तक "वसुधैव कुटुंबकम्" केवल एक आदर्श वाक्य बना रहेगा। यह धरती प्रेमपूर्ण स्वर्ग बन सकती है, लेकिन इसके लिए सबसे पहले मानवता को घृणा से मुक्त होना होगा। राष्ट्रवाद, जातिवाद, और धर्म के नाम पर हो रही राजनीति से ऊपर उठकर एक वैश्विक चेतना विकसित करनी होगी।

इसका आधार प्रेम, करुणा और सह-अस्तित्व हो: जब हम समझते हैं कि हम सभी एक ही धरती पर, एक ही प्रकृति का हिस्सा हैं, तो हमारे बीच का विभाजन अप्रासंगिक हो जाता है। प्रेम वह शक्ति है जो सीमाओं को मिटाकर सभी को जोड़ सकती है। ओशो का संदेश यही है कि व्यक्ति को भीतर से प्रेममय बनना होगा। ध्यान और आत्मचिंतन के माध्यम से जब व्यक्ति घृणा और ईर्ष्या को त्यागता है, तभी वह दूसरों को भी प्रेम दे सकता है। जब यह परिवर्तन व्यक्तिगत स्तर पर होगा, तभी यह सामूहिक रूप ले सकता है। अगर हर व्यक्ति अपने भीतर प्रेम, करुणा और सह-अस्तित्व की भावना जाग्रत करे, तो "वसुधैव कुटुंबकम्" केवल एक विचार नहीं, बल्कि एक जीवंत सच्चाई बन जाएगी। यही इस धरती को स्वर्ग में बदलने की पहली और अंतिम शर्त है।

परिणाम: इस संदेश को अपनाने से व्यक्तिगत और सामूहिक स्तर पर गहरा बदलाव आएगा। दुनिया में शांति और प्रेम का माहौल बनेगा। धर्मों के नाम पर होने वाले संघर्ष और हिंसा में कमी आएगी। लोग अपनी आस्था के साथ दूसरों की आस्था का भी सम्मान करेंगे, जिससे एक बेहतर और अधिक मानवतावादी समाज का निर्माण होगा। यह संदेश मानवता के लिए एक नई दिशा और अधिक समृद्ध भविष्य का आधार बन सकता है।

आस्तिकता-नास्तिकता दोनों ही मृत

विज्ञान ने जो तथाकथित ज्ञान प्रचलित और स्वीकृत था, उस पर संदेह किया और संदेह ने अनुसंधान के द्वार खोल दिए। संदेह जैसे-जैसे विश्वासों या अंधविश्वासों से मुक्त हुआ, वैसे-वैसे विज्ञान के चरण सत्य की ओर बढ़े। विज्ञान का न तो किसी पर विश्वास है न अविश्वास, वह तो पक्षपातशून्य अनुसंधान है।

प्रयोग-जन्य ज्ञान के अतिरिक्त कुछ भी मानने की वहां तैयारी नहीं। वह न तो आस्तिक है, न नास्तिक। उसकी कोई पूर्व मान्यता नहीं है। वह कुछ भी सिद्ध नहीं करना चाहता है। सिद्ध करने के लिए उसकी अपनी कोई धारणा नहीं है। वह तो जो सत्य है, उसे ही जानना चाहता है। यही कारण है कि विज्ञान के पंथ और संप्रदाय नहीं बने और उसकी निष्पत्तियां सार्वलौकिक हो सकीं।

जहां पूर्वधारणाओं और पूर्वपक्षपातों से प्रारंभ होगा वहां अंततः सत्य नहीं, संप्रदाय ही हाथ में रह जाते हैं। अज्ञान और अंधेपन में स्वीकृत कोई भी धारणा सार्वलौकिक नहीं हो सकती। सार्वलौकिक तो केवल सत्य हो सकता है।

यही कारण है कि जहां विज्ञान एक है, वहां तथाकथित धर्म अनेक और परस्पर विरोधी हैं। धर्म भी जिस दिन विश्वासों पर नहीं शुद्ध विवेक पर आधारित होगा, उस दिन अपरिहार्य रूप से एक ही हो जाएगा। विश्वास अनेक हो सकते हैं, पर विवेक एक ही है। असत्य अनेक हो सकते हैं, पर सत्य एक ही है।

धर्म का प्राण श्रद्धा थी। श्रद्धा का अर्थ है बिना जाने मान लेना। श्रद्धा नहीं तो धर्म भी नहीं। श्रद्धा के साथ ही उसकी छाया की भांति तथाकथित धर्म भी चला गया।

धर्म-विरोधी नास्तिकता का प्राण अश्रद्धा थी। अश्रद्धा का अर्थ है- बिना जाने अस्वीकार कर देना। वह श्रद्धा के ही सिक्के का दूसरा पहलू है। श्रद्धा गई तो वह भी गई। आस्तिकता-नास्तिकता दोनों ही मृत हो गई हैं। उन दो द्वंद्वों, दो अतियों के बीच ही सदा से हम डोलते रहे हैं।

विज्ञान ने एक तीसरा विकल्प दिया है। यह संभव हुआ है कि कोई व्यक्ति आस्तिक-नास्तिक दोनों ही न हो और वह स्वयं को किन्हीं भी विश्वासों से न बांधे। जीवन-सत्य के संबंध में वह परंपरा और प्रचार से अवचेतन में डाली गई धारणाओं से अपने आपको मुक्त कर ले। समाज और संप्रदाय प्रत्येक के चित्त की गहरी पर्तों में अत्यंत अबोध अवस्था में ही अपनी स्वीकृत मान्यताओं को प्रवेश कराने लगते हैं।

हिंदू, जैन, बौद्ध, ईसाई या मुसलमान अपनी-अपनी मान्यताओं और विश्वासों को बच्चों के मन में डाल देते हैं। निरंतर पुनरुक्ति और प्रचार से वे चित्त की अवचेतन पर्तों में बद्धमूल हो जाती हैं और वैसा व्यक्ति फिर स्वतंत्र चिंतन के लिए करीब-करीब पंगु-सा हो जाता है। यही कम्युनिज्म या नास्तिक धर्म कर रहा है।

व्यक्तियों के साथ उनकी अबोध अवस्था में किया गया यह अनाचार मनुष्य के विपरीत किए जानेवाले बड़े से बड़े पापों में से एक है। चित्त इस भांति परतंत्र और विश्वासों के ढांचे में कैद हो जाता है। फिर उसकी गति पटरियों पर दौड़ते वाहनों की भांति हो जाती है। पटरियां जहां से ले जाती हैं, वहीं वह जाता है, और उसे यही भ्रम होता है कि मैं जा रहा हूं।

दूसरों से मिले विश्वास ही उसके विचारों में प्रकट या प्रच्छन्न होते हैं, लेकिन भ्रम उसे यही कहता है कि ये विचार मेरे हैं। विश्वास यांत्रिकता को जन्म देता है और चेतना के विकास के लिए यांत्रिकता से घातक और क्या हो सकता है

विश्वासों से पैदा हुई मानसिक गुलामी और जड़ता के कारण व्यक्ति की गति कोल्हू के बैल की-सी हो जाती है। वह विश्वासों की परिधि में ही घूमता रहता है और विचार कभी नहीं कर पाता।

विचार के लिए स्वतंत्रता चाहिए। चित्त की पूर्ण स्वतंत्रता में ही प्रसुप्त विचार-शक्ति का जागरण होता है और विचार-शक्ति का पूर्ण आविर्भाव ही सत्य तक ले जाता है।

विज्ञान ने मनुष्य की विश्वास-वृत्ति पर प्रहार कर बड़ा ही उपकार किया है। इस भांति उसने मानसिक स्वतंत्रता के आधार भर रख दिए हैं। इससे धर्म का भी एक नया जन्म होगा।

धर्म अब विश्वास पर नहीं, विवेक पर आधारित होगा। श्रद्धा नहीं, ज्ञान ही उसका प्राण होगा। धर्म भी अब वस्तुतः विज्ञान ही होगा। विज्ञान पदार्थों का विज्ञान है। धर्म चेतना का विज्ञान होगा। वस्तुतः सम्यक्धर्म तो सदा से ही विज्ञान रहा है।

महावीर, बुद्ध, ईसा, पतंजलि या लाओत्से की अनुभूतियां विश्वास पर नहीं, विवेकपूर्ण आत्मप्रयोगों पर ही निर्भर थीं। उन्होंने जो जाना था, उसे ही माना था। मानना प्रथम नहीं, अंतिम था। श्रद्धा आधार नहीं, शिखर थी। आधार तो ज्ञान था। जिन सत्यों की उन्होंने बात की है, वे मात्र उनकी धारणाएं नहीं हैं, वरन स्वानुभूत प्रत्यक्ष हैं। उनकी अनुभूतियों में भेद भी नहीं है। उनके शब्द भिन्न हैं, लेकिन सत्य भिन्न नहीं।

सत्य तो भिन्न-भिन्न हो भी नहीं सकते। लेकिन ऐसा वैज्ञानिक धर्म कुछ अतिमानवीय चेतनाओं तक ही सीमित रहा है। वह लोक-धर्म नहीं बना। लोक-धर्म तो अंधविश्वास ही बना रहा है। विज्ञान की चोटें अंधविश्वास पर आधारित धर्म को निष्प्राण किए दे रही हैं। यह वास्तविक धर्म के हित में ही है। विवेक की कोई भी विजय अंततः वास्तविक धर्म के विरोध में नहीं हो सकती। विज्ञान की अग्नि में अंधविश्वासों का कूड़ा-कचरा ही जल जाएगा, धर्म और भी निखरकर प्रकट होगा।

धर्म का स्वर्ण विज्ञान की अग्नि में शुद्ध हो रहा है, और धर्म जब अपनी पूरी शुद्धि में प्रकट होगा तो मनुष्य के चेतना-जगत में एक अत्यंत सौभाग्यपूर्ण सूर्योदय हो जाएगा। प्रज्ञा और विवेक पर आरूढ़ धर्म निश्चय ही मनुष्य को अतिमानवीय चेतना में प्रवेश दिला सकता है। उसके अतिरिक्त मनुष्य की चेतना स्वयं का अतिक्रमण नहीं कर सकती, और जब मनुष्य स्वयं का अतिक्रमण करता है तो प्रभु से एक हो जाता है।

-ओशो , क्रांति सूत्र-3

ओशो के विचारों की प्रासंगिकता और महत्व

ओशो के क्रांतिकारी विचार और उनका जीवन दर्शन आधुनिक युग में दुनिया के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उनकी शिक्षाएं न केवल व्यक्तिगत विकास के लिए प्रेरणादायक हैं, बल्कि समाज, धर्म, विज्ञान और मनोविज्ञान के जटिल प्रश्नों का सरल और व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करती हैं। ओशो ने अपने संदेशों में जीवन, ध्यान, स्वतंत्रता, प्रेम, मृत्यु, मृत्यु के पार परम जीवन और आध्यात्मिकता जैसे विषयों पर मौलिक एवं गहन अंतर्दृष्टि प्रदान की।

ध्यान और आत्म-जागरूकता: ओशो का सबसे बड़ा योगदान ध्यान के क्षेत्र में है। उन्होंने ध्यान को धार्मिक अनुष्ठानों से अलग कर एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया। उनकी तकनीकें, जैसे डायनामिक ध्यान, ने दुनियाभर में लाखों लोगों को मानसिक शांति और आत्म-जागरूकता का अनुभव कराया। आज भी उनकी ध्यान विधियां अनेक आश्रमों और संगठनों में प्रचलित हैं।

धार्मिकता और स्वतंत्रता का संतुलन: ओशो ने पारंपरिक धर्मों की सीमाओं और कट्टरता को चुनौती दी। उन्होंने सिखाया कि सच्ची आध्यात्मिकता किसी बाहरी व्यवस्था से नहीं, बल्कि भीतर से उत्पन्न होती है। उनके विचार एक स्वतंत्र और प्रेमपूर्ण जीवन की वकालत करते हैं, जो आज की तनावपूर्ण और प्रतिस्पर्धी दुनिया में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। वे धार्मिकता पर जोर देते हैं, धर्म पर नहीं।

आधुनिक मनुष्य की समस्याओं के समाधान: ओशो ने उपभोक्तावादी संस्कृति, मानसिक तनाव, और रिश्तों की जटिलता जैसे मुद्दों पर बात की। उनके विचार आधुनिक मनुष्य को न केवल इन समस्याओं का समाधान प्रदान करते हैं, बल्कि जीवन को अधिक गहराई और आनंद से जीने का मार्ग भी दिखाते हैं।

युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणा: ओशो का विद्रोही दृष्टिकोण और खुले विचार युवाओं के लिए प्रेरणा का स्रोत है। उन्होंने शिक्षा, समाज और संबंधों को नए नजरिए से देखने की सीख दी। उनकी शिक्षाएं युवाओं को अपनी सच्ची क्षमता को पहचानने और डर या दबाव से मुक्त होकर जीने के लिए प्रोत्साहित करती हैं।

वैज्ञानिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण का समागम: ओशो ने विज्ञान और अध्यात्म को एक दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक बताया। उन्होंने कहा कि आध्यात्मिकता विज्ञान का आंतरिक आयाम है। उनका यह दृष्टिकोण नई पीढ़ी के लिए अत्यधिक प्रेरणादायक है, क्योंकि यह विचार सीमाओं को पार करने और जीवन को समग्रता से देखने में मदद करता है।

ओशो भगवत्ता पर जोर देते हैं, भगवान पर नहीं: व्यक्तिवाची ईश्वर से प्रार्थना नहीं, समष्टिगत अनाहत स्वर की साधना सिखाते हैं। ओशो की शिक्षाएँ व्यक्ति को पारंपरिक और संस्थागत ईश्वर की परिकल्पना से परे ले जाकर, एक व्यापक चेतना और समष्टिगत अनुभव की ओर प्रेरित करती हैं। परमात्मा किसी व्यक्ति-विशेष का नाम नहीं, बल्कि चैतन्यमय अनहद संगीत से गूंज रही जीवन की अनंत ऊर्जा का प्रतीक है। यह दृष्टिकोण मानव को मंदिर-मस्जिदों, शास्त्रों-सिद्धांतों, बाहरी पूजा-पद्धतियों और ईश्वर की मानसिक परिकल्पनाओं से से मुक्त कर आत्म-साक्षात्कार और चेतना के गहरे स्तर तक पहुंचाने का माध्यम बनता है। इस हेतु ध्यान का अभ्यास करें यानी साक्षी भाव विकसित करें। अपने विचारों और भावनाओं को देखें, लेकिन उनमें खोए बिना। भीतर की मौन ऊर्जा को सुनें। समष्टिगत संगीत के प्रति प्रेम और समर्पण को अपनाएं। भक्ति भावपूर्वक श्रवण करने से अहंकार मिट जाता, ओंकार के संग अद्वैत घट जाता, सच्चिदानंद फलित होता है।

विचारों की भीड़ में ध्यान की प्रासंगिकता: जैसे-जैसे शैक्षिक विकास और सूचना का प्रसार बढ़ रहा है, वैसे-वैसे मानव मन विचारों के भार तले दबता जा रहा है। नई-नई जानकारी और प्रतिस्पर्धा ने जीवन को जटिल बना दिया है।

इस दौर में मनुष्य तनाव, अशांति और मानसिक विक्षिप्तता का शिकार हो रहा है। यह विडंबना है कि ज्ञान और शिक्षा का विस्तार व्यक्ति को मुक्त करने के बजाय, उसे और अधिक उलझा रहा है। ऐसे में ध्यान का महत्व बढ़ता जा रहा है। ओशो के अनुसार, ध्यान ही वह माध्यम है जो व्यक्ति को मन की भीड़ से अलग करके सच्ची शांति और आनंद प्रदान कर सकता है। ध्यान हमें विचारों की अनावश्यक दौड़ से बाहर निकालकर वर्तमान में जीने का मार्ग दिखाता है। यह मानसिक तनाव को कम करता है और आत्मा के गहरे स्तर पर सुकून पहुंचाता है।

ओशो के विचार महत्वपूर्ण हैं: *क्योंकि वे इन मूल्यों को स्थापित करते हैं: व्यक्तिगत स्वतंत्रता और जिम्मेदारी, ध्यान का विज्ञान मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक, प्रेम और संबंधों में मधुरता की कला, धर्म और विज्ञान के बीच की खाई को पाटना। राजनीति, शिक्षा, स्वास्थ्य, अर्थ व्यवस्था आदि क्षेत्रों में क्रांतिकारी चिंतन-मनन। ओशो के विचारों को अपनाने से व्यक्ति मानसिक शांति, रचनात्मकता, और आत्म-जागरूकता प्राप्त कर सकता है। समाज में एक संतुलित, प्रेमपूर्ण और सामंजस्यपूर्ण जीवनशैली को बढ़ावा मिल सकता है। व्यक्तिगत और सामूहिक स्तर पर उनकी शिक्षाएं दुनिया को अधिक समझदार, करुणामय और स्वतंत्र बनाने में सहायक हो सकती हैं। ओशो का संदेश आज के युग में और भी प्रासंगिक हो गया है। उनकी शिक्षाएं हमें यह समझने में मदद करती हैं कि मन की अशांति से बाहर निकलने का एकमात्र उपाय ध्यान है। जैसे-जैसे दुनिया की जटिलताएं बढ़ रही हैं, ओशो का ध्यान का संदेश लाखों लोगों के लिए मार्गदर्शक बनता जा रहा है।*

ओशो: संघर्ष और त्याग की कथा

ओशो (भगवान श्री रजनीश) के जीवन में संघर्ष और त्याग का एक गहरा पहलू है, जो उनके विचारों, जीवनशैली और दर्शन को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

बचपन का संघर्ष: ओशो का जन्म 11 दिसंबर 1931 को मध्य प्रदेश के कुचवाड़ा गांव में एक साधारण परिवार में हुआ। बचपन से ही वे जिज्ञासु और विद्रोही स्वभाव के थे। 7 साल की उम्र में 1938 में नानाजी का देहांत हुआ। 11 साल की उम्र में 1942 में बहन कुसुम ने और 16 साल की उम्र में 1947 में शशि ने संसार छोड़ा। इन 3 घटनाओं ने उन्हें मृत्यु के सत्य में गहराई से झांकने का अवसर दिया। जीवन सपना प्रतीत होने लगा। साहित्य सृजन और साम्यवाद के स्थान पर 1948 से उनकी दृष्टि में अध्यात्म महत्वपूर्ण हो गया।

शैक्षिक और वैचारिक संघर्ष: ओशो ने अपनी पढ़ाई के दौरान पारंपरिक मान्यताओं को चुनौती दी। उन्होंने खुलेआम धर्म, परंपराओं और समाज की रूढ़ियों का विरोध किया। इससे उन्हें शिक्षकों और साथियों के साथ संघर्ष करना पड़ा। उदाहरण: स्कूल में गांधी टोपी न लगाने की सजा प्राप्त की। जबलपुर में दर्शनशास्त्र की पढ़ाई के दौरान, प्रोफेसर से तर्क करने की वजह से उन्हें निष्कासित कर दिया गया।

सत्य की खोज में असत्य का त्याग: ओशो ने अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों में ध्यान और आत्म-ज्ञान के लिए बहुत कुछ त्यागा। उन्होंने पारिवारिक दबाव और समाज की सामान्य अपेक्षाओं को दरकिनार कर दिया। मानने की जगह जानने पर उनका जोर रहा। अंधे विश्वासों को त्यागा, विवेक की आंख खोली। 21 वर्ष की उम्र में वे समाधि के अनुभव तक पहुंचे, जिसने उनके भावी जीवन की दिशा तय की।

क्रांतिकारी दर्शन के करुणापूर्ण प्रसार से उत्पन्न संघर्ष: ओशो ने अपने विचारों का प्रसार करने के लिए पहले देश भर में, बाद में दुनियाभर में यात्रा की। 1969 में गांधी के खिलाफ 1970 में समाजवाद के खिलाफ, फिर संभोग से समाधि की ओर प्रवचनमाला ने विरोध का तूफान ला दिया। 1974 में पुणे में आश्रम स्थापित करने के बाद, उन्हें

समाज, मीडिया और राजनीतिक संगठनों के कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। उनके विचारों को अत्यंत विवादास्पद माना गया।

अपने ही अनुयायियों की बगावत का सामनाः साढ़ तीन साल से मौन में डूबे हुए ओशो ने 1984 में पुनः व्याख्यान देना आरंभ किया। कम्यून की व्यवस्था संभालने वाली महिलाओं की टीम को यह बर्दाश्त न हुआ। उन्होंने 1985 में गुरुद्रोह किया। अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन डीसी के क्षेत्रफल से करीब डेढ़ गना बड़ा कम्यून अचानक अराजकता का शिकार हो गया।

स्वास्थ्य और निर्वासनः अमेरिका में रजनीशपुरम स्थापित करने के बाद कानूनी विवादों और साजिशों के कारण उन्हें जेल जाना पड़ा। अमेरिकन सरकार और वेटिकन के पोप के दवाब में 21 देशों से उन्हें निष्कासित किया गया। इस दौरान जेल में दिए गए जहर के कारण उनका स्वास्थ्य गंभीर रूप से प्रभावित हुआ। लेकिन वे अंत तक अपने नूतन ध्यान प्रयोगों और क्रांतिकारी शिक्षाओं को अनवरत सिखाते रहे।

कठिनाईयों से भरी एक क्रांतिकारी यात्रा: ओशो का जीवन एक ऐसी गाथा है, जिसमें संघर्ष और क्रांति की झलक मिलती है। उनकी पूरी यात्रा सत्य की खोज और रूढ़ियों को चुनौती देने की रही। समाज की रूढ़िवादी भीड़, जो झूठ और अंधविश्वास पर आधारित थी, ओशो के खुले और साहसिक विचारों को स्वीकारने में असमर्थ रही। यही कारण है कि ओशो को हर कदम पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

ओशो ने धर्म को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया: उनके विचार, प्रेम, ध्यान और स्वातंत्र्य की बात करते थे, जो प्रचलित शोषणकारी धार्मिक ढांचे के विपरीत थे। उन्होंने धर्म के नाम पर चल रहे पाखंड और डर के तंत्र को चुनौती दी, जिसके कारण वे धार्मिक संगठनों और समाज के ठेकेदारों के निशाने पर आ गए।

सत्य को उजागर करने के प्रयास: कई लोगों के लिए असहनीय थे, क्योंकि ओशो की शिक्षा जीवन को जागरूकता के साथ जीने की प्रेरणा देती थी। झूठ और परंपराओं की बेड़ियों में जकड़ा समाज, किसी भी क्रांतिकारी विचार को कुचलने के लिए तत्पर रहता है। लेकिन ओशो ने इन विरोधों के सामने कभी हार नहीं मानी।

सच्चाई का मार्ग कंटकाकीर्ण होता है: जो व्यक्ति अपने सत्य के प्रति ईमानदार रहता है, उसे सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक शोषण से लड़ना पड़ता है। ओशो के विचार आज भी लाखों लोगों को प्रेरित करते हैं। उनकी यात्रा हमें यह समझने में मदद करती है कि सत्य और स्वाधीनता का मार्ग चुनौतीपूर्ण हो सकता है, लेकिन अंततः यह ही एकमात्र सार्थक जीवन है।

महत्वपूर्ण सीखः ओशो का जीवन संघर्ष और त्याग का प्रतीक है। उन्होंने दिखाया कि सत्य और स्वतंत्रता की खोज में कठिनाइयाँ अनिवार्य हैं, क्योंकि असत्य और परतंत्रता का व्यवसाय चलाने वालों के धंधे पर चोट पड़ती है। लेकिन आत्म-विश्वास और तथाता भाव से सब कुछ पार किया जा सकता है।

ओशो की शिक्षाओं का जीवन पर प्रभाव

ओशो के छोटे भाई शैलेंद्र का जीवन ओशो के साथ बिताए विशेष क्षणों से गहराई से प्रभावित हुआ। शैलेंद्र ने ओशो के साथ अनेक ऐसे अनुभव साझा किए, जिन्होंने उनके विचारों और जीवन को नई दिशा दी। इन पलों से शैलेंद्र को न केवल आध्यात्मिक ऊर्जा मिली, बल्कि जीवन को सरलता और गहराई से समझने का एक नया दृष्टिकोण भी प्राप्त हुआ।

स्वीकार भावः ओशो जैसा पसंद करते, वैसा हमेशा नहीं होता था। किंतु वे इससे जरा भी विचलित नहीं होते थे। उदाहरणः ओशो मुंबई अथवा हिमालय में निवास करना चाहते थे, लेकिन पुणे में रहे। कच्छ, गुजरात में कम्यून बसाना चाहते थे, मगर ओरेगॉन में बसा। अमेरिका के किसी हरे-भरे, बड़े-बड़े वृक्षों वाले सुंदर प्राकृतिक स्थान पर बसना चाहते थे किंतु रेगिस्तान में भी मजे से रहे। ओशो की यह तथाता-भावना अद्‌भुत प्रेरणा बनी।

सहज त्यागः दुनिया उनकी 97 रोल्स रॉयस कारों, 5 हवाई जहाजों और 64 हजार एकड़ भूमि की चर्चा तो करती है, कोई यह नहीं बताता कि उन्होंने कभी पलटकर उन चीजों को नहीं देखा। वर्तमान में जो है, उसका मजा। जो नहीं है, उसका स्मरण तक नहीं।

अन्याय से वैचारिक संघर्षः ओशो ने व्यक्तिगत रूप से नहीं, केवल मनुष्य के कल्याण हेतु सत्य के पक्ष में आवाज उठाई। जब उनकी हत्या के प्रयास किए गए तब उन्होंने अदालत के द्वार नहीं खटखटाए। उनकी लड़ाई विचार से रही, व्यक्ति से नहीं।

पुस्तकों के शीर्षक और उपशीर्षक से मिले गुप्त संकेतः जिंदगी के अंतिम 10 माहों में ओशो ने 10 किताबों के उपशीर्षक दिए, जिनसे सष्ट पता चलता है कि वे देह त्यागने वाले हैं। ठीक इसी प्रकार करीब 125 किताबों के शीर्षक अनाहत नाद की तरफ इशारा करते हैं। ये दो महत्वपूर्ण संकेत जीवन में रूपांतरणकारी साबित हुए।

बचपन के समय का प्रभावः शैलेंद्र ने बचपन से ओशो को बहुत करीब से देखा। ओशो की तीव्र जिज्ञासा और जीवन के प्रति विद्रोही दृष्टिकोण ने उन्हें प्रभावित किया। वे कहते हैं कि ओशो के साथ बिताया हर पल एक गहरी शिक्षा के समान था। ओशो की गैर-गंभीरता, सहजता और हर स्थिति को गहराई से देखने की कला ने शैलेंद्र को प्रेरित किया।

ध्यान का अनुभवः ओशो ने शैलेंद्र को ध्यान की वास्तविक गहराई से परिचित कराया। शैलेंद्र के अनुसार ओशो की उपस्थिति में ध्यान करना एक अलग ही अनुभव था। उन्होंने ध्यान को केवल एक तकनीक नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला के रूप में समझा।

सत्य और स्वतंत्रता की शिक्षाः ओशो ने उन्हें सिखाया कि हर व्यक्ति को अपने सत्य को खोजना चाहिए और किसी भी बाहरी चीज पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। यह सरल पर गहरा मार्गदर्शन शैलेंद्र के लिए परिवर्तनकारी साबित हुआ।

हास्य का उपदेशः ओशो की उपस्थिति में शैलेंद्र ने सीखा कि जीवन को गंभीरता से नहीं, बल्कि सहजता और हास्य के साथ जीना चाहिए। जीवन का हर पल अनमोल है, और इसे आनंद एवं कृतज्ञता के साथ जीना चाहिए।

मृत्यु और जीवन का संतुलनः ओशो के प्रवचनों से शैलेंद्र को यह समझ आया कि मृत्यु का भय जीवन के आनंद में बाधा है। जीवन और मृत्यु एक ही प्रक्रिया के दो पहलू हैं। शैलेंद्र को जीवन निर्भय रूप से स्वीकारने और जीने की प्रेरणा मिली।

गहराई से जीने की प्रेरणा: ओशो की शिक्षाएं जीवन को नई दृष्टि और गहराई से जीने की प्रेरणा देती हैं। उनकी सदाबहार प्रसन्नता और गैर-गंभीरता ने शैलेंद्र को जीवन की चुनौतियों को सहजता से स्वीकार करने का दृष्टिकोण दिया। ओशो ने सिखाया कि जीवन को हल्केपन और आनंद के साथ जीया जाए, क्योंकि गंभीरता से भरा जीवन न केवल बोझिल होता है, बल्कि सृजनशीलता को भी बाधित करता है।

आंतरिक शांति और प्रेमपूर्ण व्यवहार: ओशो की शिक्षाओं ने उन्हें सिखाया कि बाहरी दुनिया में शांति और संतुलन लाने के लिए सबसे पहले आंतरिक शांति को पाना आवश्यक है। उनके प्रेम और करुणा के संदेश ने शैलेंद्र को दूसरों के प्रति अधिक संवेदनशील और दयालु बनाया। आंतरिक शांति और प्रेमपूर्ण व्यवहार जैसे गुण शैलेंद्र के व्यक्तित्व का हिस्सा बन गए।

ओशो के उत्तरदायित्व, निष्ठा, और समय की पाबंदी: ने शैलेंद्र को अपने कार्य और जीवन के प्रति समर्पित और अनुशासित बनाया। उनके अध्ययन-मननशील स्वभाव ने ओशो की शिक्षाओं के गहरे अर्थ को आत्मसात करने में मदद की।

महत्वपूर्ण सीखः शैलेंद्र के लिए ओशो के साथ बिताए गए पल उनके जीवन के स्तंभ हैं। इन पलों ने उन्हें आत्म-स्वीकृति, स्वतंत्रता, और आनंदमय जीवन का मार्ग दिखाया। शैलेंद्र के जीवन को गहराई, समृद्धि, और अर्थ प्रदान किया। इन सद्गुणों ने न केवल शैलेंद्र के जीवन को सकारात्मक दिशा दी, बल्कि उनके व्यक्तित्व को भी विकसित और प्रेरणादायक बनाया। आज शैलेंद्र ओशो के विचारों को प्रचारित करते हुए अपनी ऊर्जा और दृष्टिकोण को दूसरों के साथ साझा करते हैं।